चन्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक पत्र

Chandamama, May '54

Photo by J. V. S. Sastry

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

इष्ट ध्यान

प्रेषिका
शा. कु. पावस, इन्दौर

बिड़ला लेबोरेटरीज, कलकत्ता-२०

डोंगरे का बालामृत

अत्यंत गर्व के साथ, एक और नए प्रकाशन की घोषणा !

★

चा ★ न्दा ★ मा ★ मा

(गुजराती)

★

आपके अपने प्रिय चन्दामामा के समूह में
और एक भाषा की आवृत्ति !

★

वार्षिक चन्दा	एक प्रति
चार रुपए आठ आने	छह आने

विनय : एजन्सी के लिए पत्र व्यवहार करें ।

⁂

चन्दामामा पब्लिकेशन्स

वडपलनी, मद्रास-२६.

दाँतों की रक्षा के लिए सावधान रहो !

झुमकी की प्यारी सखी है रमा। रमा अपनी पढ़ाई में बहुत अच्छी है। परन्तु उसे बड़ा दुख यह है कि झुमकी के सिवा और कोई उसको दोस्त बनाना नहीं चाहता, क्योंकि उसके मुंह से दुर्गन्ध आती है। इसी लिए वह गन्दी रहती है और अपने दांतों को नहीं मांजती। रमा एक दिन दोपहर को जब झुमकी के घर पर खेल रही थी, कि सहसा उसके दांतों में दर्द होने लगा और वह रोने लगी। यह देख कर झुमकी रमा को अपने पिताजी के पास ले गई। झुमकी के पिताजी एक अनुभवी डाक्टर थे। उन्होंने दांतों पर लगाने की एक दवाई रमा को दी; और उससे कहा कि यदि वह **कलकत्ता कैमिकल** वालों की नीम से बनी हुई **'नीम टूथ पेस्ट'** से हर रोज पाबन्दी के साथ अपने दांत मांजती रहे तो वह कभी भी दांतों के रोग से पीड़ित नहीं होगी। दांतों की बीमारी से और कई बीमारियों के पैदा होने की संभावनाएं है इसलिए बचपन से ही दांतों के संबन्ध में सावधान रहना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि वह दिन में तीन बार **कलकत्ता कैमिकल** वालों की **'स्टेरिलीन'** से कुल्ला भी करती रहे। झुमकी सावधानी से अपने पिताजी की बातों को सुनती रही, और रमा को उसके घर ले जाकर उसकी माताजी से अपने पिताजी की हिदायत वाली बातें बता दीं।

दो दिन के बाद रमा हंसती हुई झुमकी के घर खेलने आई। झुमकी के पिताजी ने पूछा— 'कैसा है तुम्हारे दांत का दर्द ?' रमाने जवाब दिया, उसने ठीक उनकी हिदायत और अपनी माताजी की आज्ञानुसार दिन में तीन बार **'स्टेरिलीन'** गरम पानी में मिला कर उससे कुल्ला किया, और अब दिन में दो बार **'नीम टूथ पेस्ट'** से वह दांत मांजती है जिसके फल स्वरूप अब न उसके दांतों में दर्द है और न उसके मुंह में दुर्गन्ध।

झुमकी ने रमा के उन साथियों के बतलाने के लिए जो बचपन से दांतों की देख-रेख नहीं करते, और बाद को रमा की तरह पीड़ित होते हैं यह चित्र खींचा है।

(दि कलकत्ता केमिकल कम्पनी लि. ३५, पण्डितिया रोड, कलकत्ता–२९,
द्वारा बाल-बच्चों की भलाई के लिए प्रचारित।)

चन्दामामा
संचालक :
चक्रपाणी
दो पंखों से उड़
जिस प्रकार चिड़िया अपने श्रद्धा
चाहे वहाँ उड़ जाती है, इसी प्रकार मनुष्य
और विश्वास के बल जो चाहे प्राप्त कर लेता है।
श्रद्धा और विश्वास हमारे दो पंख हैं। उनकी
आराधना से हम दिव्य-शक्ति प्राप्त करते हैं। ध्रुव
और प्रह्लाद ने श्रद्धा और विश्वास के बल पर भगवान
को प्राप्त कर लिया था। लेकिन श्रद्धा और विश्वास
के साथ-साथ कुछ काम करने की जरूरत है। वह
काम अभ्यास कहा जाता है। अभ्यास से मूर्ख भी
विद्वान बन जाता है और असम्भव भी सम्भव बन
जाता है। अभ्यास एक अद्भुत जादू है; चन्दामामा
के पाठकों को भी ऐसा ही जादूगार होना चाहिए।
वर्ष 5 : मई 1954 : अङ्क 9

एक खोकर चार पाए

सेठ धन्ना लाल जी
एक दिन बाजार से।
लेके कुछ सामान जब
गाँव को अपने चले।

थैलियाँ कंधे पै रख
झूमते गाते हुए।
जा रहे थे इस तरह
मन को बहलाते हुए।

जाते-जाते इस तरह
नदी किनारे जा रुके।
देखी जो हालत नदी की।
तब वह चिंता में पड़े।

बाढ़ थी नदी में आई
दिन भी थे बरसात के।
खाई खड्डे नाले झील
थे लबालब सब भरे।

उस समय तट पर न थी
नाव कोई दीखती।
जब यह देखा हाल तो
घबरा उठे वह सेठ जी।

नाव तट पर है नहीं—
और बादल हैं घिरे।
पार जाएँ किस तरह
यह लगे वह सोचने।

पेड़ इक बहता हुआ
नदी में आता था उधर।
देखा जो धन्नालाल ने
खुश हो गए ये सोचकर।

'बैठ कर उस पार मैं
जाऊँ न क्यों इस पेड़ पर।
पैसे के पैसे बचेंगे—
सैर होगी पेट भर!'

सोच कर ऐसा तुरत
सेठ जी पहुँचे वहाँ।
तैरता आता था वह-
पेड़ का बेड़ा जहाँ।

जैसे ही कूदे नदी में
हाथ से थैली छूटी।
पेड़ तो हाथ आ गया
थैली नदी में जा बही।

तब य सोचा सेठ जी ने
'चीर कर इस पेड़ को;
लकड़ियाँ बेचेंगे इसकी,
ताकि घाटा पूरा हो।'

बात है यह इक पुरानी
आज लो तुम भी सुनो
'एक पैसा खोके बनिया
चार पाए देख लो।'

मुख-चित्र

हम पहले बता आए हैं, कि वीर शिरोमणि द्रुपद राज को अर्जुन हरा कर बाँध लाया और गुरु द्रोणाचार्य के पास खड़ा कर दिया।

गुरु ने अर्जुन की खूब तारीफ़ की। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह हुई, कि अर्जुन से पराजित हुए द्रुपद राज ने भी मुक्त-कंठ से उसकी प्रशंसा की।

अब द्रुपद राज द्रोणाचार्य से बदला लेने की तैयारी में लग गया। उसने प्रतिज्ञा की—'जब तक द्रोण को मारने वाला पुत्र और अर्जुन को वरण करने वाली पुत्री नहीं पैदा कर लूँगा; तब तक अपने राज्य में नहीं लौटूँगा।'

गंगा तट पर रहने वाले ऋषियों को उसने अपनी प्रतिज्ञा सुनाई। उन्होंने 'पुत्र कामेष्टि यज्ञ' की सलाह दी। उसी प्रकार यज्ञ के लिए सब आवश्यक सामग्रियाँ जुटा कर वेदोक्त विधि से द्रुपद राज ने यज्ञ पूरा किया।

यज्ञानुष्ठान पूरा करके अंत में पूर्णाहुति देने के समय तेजस्वी और अस्त्र-शस्त्र तथा कवच-कुंडल से सुसज्जित एक पुत्र पैदा हुआ। उस समय रहस्य वाणी ने कहा—'राजा! यही तुम्हारा वह पुत्र धृष्टद्युम्न है जिस के लिए तुम ने यह यज्ञ किया था।'

उसके बाद अग्नि-कुंड से खुद अग्नि-देवता प्रगट हुए। उनके हाथों में एक बच्ची थी। सोने की पुतली जान पड़ती थी वह बच्ची। उसे द्रुपद के हाथों में देते हुए अग्निदेव ने कहा—'तुमने जैसी पुत्री चाही थी, वह है यह द्रौपदी' यह कह कर वे अंतर्धान हो गए।

द्रुपद राज ने जो संकल्प किया था, वह पुत्रकाम यज्ञ इस संपूर्णता से पूरा हुआ, यह देख कर वह अपने पांचाल राज्य को लौट गया। अपने वीर और प्रजा पालक राजा को राज्य में वापस आया देख कर सारी प्रजा सुख और संतोष से भर गई। देवता के वर प्रसादस्वरूप जो धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के रूप में संतान प्राप्त हुई थी; वे दोनों शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह दिन दुना रात चोगुना उन्नति करने लगे। वीरों में धृष्टद्युम्न और सुन्दरियों में द्रौपदी ने प्रसिद्धि प्राप्त की।

अक्ल का दुश्मन

किसी जमाने में ब्रह्मदत्त जब काशी का राजा था, तो भगवान बोधिसत्व एक बन्दर के रूप में पैदा हुए। गङ्गा नदी के तट पर जमे हुए एक बड़े पीपल के पेड़ पर उस बन्दर ने अपना अड्डा जमाया।

नदी जब भरी होती तो क्रूर मगर उसकी धारा में घूमते-फिरते दीख पड़ते थे।

ऐसे दुष्ट जानवरों से खूब होशियार रहना चाहिए, पेड़ पर से कभी उतरना नहीं चाहिए, ऐसी चेतावनी भगवान बोधिसत्व दूसरे बन्दरों को देते रहते थे।

एक दिन नदी में रहने वाली माता-मगरनी ने अपने बच्चों से कहा—'बच्चो! मुझे बहुत दिनों से बन्दर का कलेजा खाने की इच्छा है; क्या मेरी इच्छा पूरी नहीं होगी?' यह सुन कर मगर के बच्चों ने कहा—'माँ! बन्दर बड़े चालाक होते हैं। एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उछलते हुए भाग जाते हैं। कैसे पकड़ा जाय उन्हें!' लेकिन माता-मगरनी ने हठ कर लिया कि बन्दर का कलेजा लाकर देना ही होगा।

एक मगर बच्चा जाकर पीपल के पेड़ के चारों ओर घूमने लगा। पेड़ पर रहने वाले बन्दर टहनी और पत्ते तोड़-तोड़ कर उसके ऊपर गिराने लगे।

इधर यह हो रहा था, उधर कुछ बन्दर पानी के पास झुकने वाली डाली पर उतर आए। उन बन्दरों को देख कर मगर बच्चे ने कहना शुरू किया—'अरे भाइयो, तुम कितने काल से इस पेड़ पर रहते आए हो, लेकिन तुम यह नहीं जानते कि इस नदी के बीच एक परम सुन्दर द्वीप है और उस में फलों से लदा एक सुन्दर आम का पेड़ है। आओ, मैं तुम्हें दिखा देता हूँ!'

प्रेम नारायण

उसकी बातें सुनते ही बन्दरों के मुंह से राल टपक पड़ी। उन में से एक ने पूछा— 'अरे भाई! हमें तो तैरना नहीं आता। हम कैसे आ सकते हैं?'

'अरे यह कौन-सी बड़ी बात है। आओ मेरी पीठ पर बैठ जाओ; एक क्षण में तुम्हें वहां पहुँचा दूंगा!'—बड़ी बहादुरी से वह बोला।

'अच्छा, तो मुझे ले चलो'—कहते हुए एक छोटा बन्दर का बच्चा तयार हो गया। दूसरे बन्दरों ने उसे बहुत रोका—'मगर बड़े धोखे-बाज होते हैं, होशियार रहना!' सब ने मिल कर उसको समझाया। लेकिन बन्दर का बच्चा अपनी धुन में ऐसा मस्त था, कि किसी की बात उसके कानों में न पड़ी। अत्यंत आनंद से वह मगर का बच्चा नदी में तैरते हुए जाने लगा। यों जाते-जाते सहसा वह गंभीर जल के अन्दर डूब गया।

बन्दर ने डर कर मगर की पीठ को अपने दोनों हाथों और पैरों से कस कर बाँध लिया।

वह मगर बच्चा फिर एक बार ऊपर आया। बन्दर का सारा शरीर भीग गया था। वह अपनी आँखें पोंछते कहने लगा— 'भाई मगर, तुमने ऐसा क्यों किया?'

'मैं तुमको मार डालूँगा और जब तक मरते नहीं, मैं तुम्हें पानी में डुबोता रहूँगा!' क्रूरता से मगर बच्चे ने कहा।

'क्यों तुम मुझे मारने जा रहे हो? तुम्हारे प्रेम पर भरोसा कर के ही तो मैं आया था!' बन्दर ने भोले पन से पूछा।

'क्यों क्या? मेरी माँ को कितने दिनों से बन्दर का कलेजा खाने की उत्कट इच्छा रहती आई है। तुम को मैं अपनी माँ के हाथों में सौंप दूंगा!' उस निर्मोही ने जवाब दिया।

'अरे पागल कहीं का! यह बात पहले ही क्यों नहीं बतादी थी? जैसे ही तुमने चलने

की बात कही, मैंने अपना कलेजा निकाल कर अपने पेड़ पर रख दिया। मेरा कलेजा तो उसी पेड़ पर रह गया है!' बन्दर की यह बात सुन कर वह मगर-बच्चा आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा—'क्यों तुम्हारा कलेजा तुम्हारे साथ नहीं रहता?'

'अरे नहीं! देह से महत्व-पूर्ण होता है कलेजा; उसे हम पेड़ से लटका कर रखते हैं। अगर तुमको विशेषकर कलेजे की जरूरत है तब तो हमें फिर से पेड़ के पास जाना चाहिए। लेकिन अब तक तो तुम्हारे कहे अनुसार हम उस आम वाले द्वीप के पास पहुँच ही गए होंगे! मुझे वहाँ उतार दो: पहले दो-चार आम तो खा लूँ!' बन्दर के बच्चे ने बड़ी चालाकी से कहा।

'आम खाना पीछे। पहले मुझे तुम्हारा कलेजा चाहिए। चलो, पेड़ के पास लौट चलें' कहते हुए मगर के बच्चे ने तेजी से तैर कर बन्दर के बच्चे को पेड़ के पास पहुँचा दिया।

पेड़ के पास पहुँचते ही बन्दर का बच्चा उछला और पेड़ पर पहुँच गया। वहाँ पेड़ की डाली पर मजबूती से बैठ कर किल्कारियाँ भरते हुए कहने लगा—'अरे अकल के दुश्मन!—आ ऊपर आ, मेरा कलेजा ले जा....'

बन्दर के बच्चे को मालूम हो गया, कि मगर का बच्चा उस से बदला लेगा। इसलिए वह किसी दूर के पेड़ पर जाकर रहने लगा। वह मगर-बच्चा मालूम नहीं कैसे जान गया कि बन्दर के बच्चे ने अपना अड्डा बदल दिया है। इस लिए वह सारा दिन उस पीपल के पेड़ के नीचे घात में बैठा रह गया।

उधर नदी के बीच में एक 'दीरा' (छोटा द्वीप) निकल आया था। उस दीरे में जामुन ही जामुन के पेड़ थे और उन में

सुन्दर-सुन्दर फल लटक रहे थे। मीठी सुगंध चारों तरफ़ गमक रही थी। उस दीरे और नदी के तट के बीच एक बड़ी चट्टान खड़ी थी। बन्दर के बच्चे को उस द्वीप में जाने का कुतूहल हुआ और वह पेड़ पर से कूदता हुआ चट्टान पर जा पहुँचा। उस चट्टान पर से उसने फिर एक छलांग भरी और उस 'दीरे' में पहुँच गया।

मगर-बच्चा नदी में ही डूबा हुआ था, और सब कुछ टक लगा कर देख रहा था। वह इस घात में था कि जब यह बन्दर का बच्चा लौटेगा तब वह उसे पकड़ ले जाएगा।

पेट भर कर फल खाने के बाद बन्दर का बच्चा फिर 'दीरे' से उस चट्टान पर कूद आया। लेकिन सवेरे की अपेक्षा अभी वह ज्यादा बड़ी दीख पड़ती थी—'अरे कहीं मगर तो नहीं बैठा हुआ है इधर!' इस प्रकार बन्दर के बच्चे ने मन में सोचा। उसने किलकारियाँ भरीं। जैसा सोचा था वैसा ही हुआ। कुछ देर के बाद मगर हिला और उसने मुँह खोला—'अरे तेरा सत्यानाश हो! अच्छा, जैसा सोचा था वैसा ही हुआ; तो फिर मुँह खोलो, मैं आता हूँ।'

मगर ने मुँह खोल दिया और आँखें बन्द कर लीं। मगर का यह रहस्य बन्दर के बच्चे को मालूम था।

खुशी के मारे मगर का बच्चा मुहँ खोलता जाता था; लेकिन उस की आँखें बन्द थीं। बन्दर का बच्चा उछला तो सही, पर कहाँ!—मगर के मुँह में नहीं उसके सिर पर। फिर वहाँ से एक छलांग भरी और अपने पेड़ पर जा पहुँचा।

मगर के बच्चे ने आँखें खोल कर देखा तो पेड़ पर से वह बन्दर का बच्चा किलक कर बोला—'अरे अकल के दुश्मन! तू चला है मुझ से बदला लेने!' यों खिल्ली उड़ाते हुए वह पेड़ की सब से ऊँची फुनगी पर जा बैठा।

यह कुज़को का मजबूत और अद्भुत गढ़ पेरो में है। यह प्राचीन-काल में बनाया गया था। यह अत्यन्त अद्भुत और मजबूत गढ़ इतिहास के पहले के निवासियों का बनाया हुआ है। यह गढ़ ऐसे पत्थरों से बना है, कि हर पत्थर का वजन दो टन है। इसके बनाने में नब्बे साल लगे थे।

★

यह संसार का सब से बड़ा और पुराना वृक्ष 'रेडवुड' (लाल लकड़ी) कैलिफोरनिया अमेरिका, में है। इस वृक्ष की चौड़ाई 101½ फिट घेरे में है और ऊँचाई ३०० फिट है। यह वृक्ष दो हजार साल पुराना है।

★

गिद्ध के बारे में कहा जाता है कि यह ७० वर्ष तक जीवित रहता है—हाल ही में आस्ट्रेलिया में इतनी बड़ी आयु का, एक दाढ़ी वाला गिद्ध देखा गया है—जिसके पंखों की लम्बाई आठ फिट है।

ताता थेई! ताता थेई!!

सूर्य भगवान के दो बेटे थे। पहला यम और दूसरा शनि।

सूर्यदेव हर रोज सबेरे अपने सात घोड़े वाले रथ पर सवार होकर, लोक-संचार आरम्भ कर देते थे। एक दिन यम ने कहा—'तुम्हारे साथ मैं भी आऊँगा। अकेले घर में रहना अच्छा नहीं लगता।'

लेकिन कपड़े पहन कर आने में यम को कुछ देरी हो गई। सूर्य तो किसी के लिए नहीं ठहरते; दरवाजे पर आते-आते सूर्य का रथ निकल गया। उस समय यम बच्चा था, इसलिए पिता के चले जाने से उसका मुख बहुत उदास हो गया।

उससे भी छोटा था शनि। लेकिन वह बड़ा धूर्त था। उसने अपने भाई को देख कर कहा—क्यों भाई! यह उतरा हुआ चेहरा क्यों है तुम्हारा?' इस पर यम ने सारी कहानी कह सुनाई। यह सुन कर शनि ने कहा—'उनके साथ घूमने से तुमको क्या मिलेगा? अगर कोई तमाशा हुआ और तुम देखना चाहो, तो उनका रथ तो क्षण भर के लिए भी रुकेगा नहीं। अगर तुमको कुछ देखना है, तो मेरे साथ आओ। ऐसा-ऐसा तमाशा देखोगे, कि हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाएँगे!'

वे लोग वहाँ से चल कर भू-लोक में आए और एक नगर में घुसे। सबेरा हो आया था, लेकिन नगर की गलियों में किसी आदमी या आदमजात की सूरत नहीं दीखती थी। चमचमाती जरी के काम वाले अपने एक जोड़ी चप्पल सड़क के बीच रख कर शनि हँसता हुआ यम के पास आ गया; और कहने लगा—'देखो, अब क्या-क्या गुल खिलता है!'

उस नगर में लक्ष्मीलाल नाम का एक लखपती सेठ रहता था। वह सबेरे उठ

सूरज भानु

कर अपनी दूकान पर जा रहा था, कि रास्ते में चमचमाता हुआ वह चप्पल का जोड़ा दीख पड़ा।

'मालूम होता है रात में गाड़ी से किसी का जूता खिसक कर गिर गया है!'—अपने पैर का चप्पल खोल कर उसने उस जरीदार-चप्पल को पहन कर देखना चाहा, कि उसके पैर में ठीक होता है या नहीं।

अचम्भे की बात देखो! वह चप्पल जैसे उसी के पैर के लिए तैयार किया गया हो! उस प्रकार चप्पल उसके पैर में फिट हो गया। फिर उसने चारों तरफ नजर दौड़ा कर देखा कि कोई देख तो नहीं रहा है। लेकिन जब उसे कोई नहीं दीख पड़ा तो बड़ी शान से अकड़ते हुए उसने एक कदम आगे बढ़ाया।

लेकिन जमीन पर पैर रखते ही उसे ऐसा लगा कि जैसे कोई लात मार रहा हो; और वह जमीन पर से ऊपर उछला। पैर जमीन पर पड़ते ही वह और भी उछलने लग गया। लोग जमा हो गए; जैसे वहाँ कोई नाच हो रहा है!

देखने वालों की भीड़ बढ़ी। भारी-भरकम शरीर वाला लक्ष्मीलाल उछल रहा था। सब के लिए वह भारी तमाशा हो गया। लेकिन उन तमाशा देखने वालों में सेठजी का एक कर्जदार नाई भी वहाँ आ गया था। उसको सेठजी की हालत देख कर तरस आ गया। उसे ऐसा लगा जैसे सेठजी खूब पीकर ताता थेई कर रहे हों। इसलिए धीरे-धीरे उनके पास जा उसने उनका दाहिना हाथ पकड़ लिया।

सेठ का हाथ पकड़ते ही! उस के हाथ से जैसे सट जाय, उस तरह वह भी उसके साथ नाचने लग गया। वह बेचारा नाई बाजार में चावल खरीद ने आया था। उसकी माँ खोजती हुई आई। सेठजी के

साथ नाचते हुए अपने बेटे को देख कर—'यह क्या हो रहा है!' कह कर उसने उसका हाथ पकड़ा और खींच ले जाना चाहा। लेकिन बेटे को खींच ले आने के बदले वह भी नाचने लग गई।

सड़क पर लोगों की ऐसी भीड़ देख कर एक सिपाही दौड़ा हुआ आया और कहने लगा—'यह क्या गोल-माल हो रहा है! चलो सभी को न्यायाधीश के सामने चलना होगा' इस प्रकार सिपाही चिल्ला कर एक का हाथ पकड़ कर खींचने लगा। लेकिन हाथ पकड़ते ही वह भी तुरत उछलने लग गया।

दूसरे ही क्षण सिपाहियों का सरदार वहाँ आ पहुँचा और कहने लगा—'गोल-माल रोकने जाकर तू भी उछलने लग गया है' इस प्रकार चिल्लाते हुए उसने सिपाही का हाथ पकड़ कर खींचा। खींचते ही वह भी उन लोगों के साथ नाचने लग गया। पेड़ की आड़ में खड़े यम को पहले तो यह तमाशा ही जान पड़ा। लेकिन जब उसने यह देखा कि उस भारी-भरकम शरीर वाले सेठ की, और उस बुढ़िया की बिना आदत के उछलने के कारण, कैसी दैनीय हालत हो रही है, तो उसे दया आ गई।

उसने अपने भाई शनि से कहा—'अब इनकी हालत पर तरस खाओ!' शनि ने जादूगर की तरह अपना हाथ हिलाया और नाचने वालों के हाथ छूट गए। सब लोग एक ओर आ गिरे। किसी ने पूछा—'यह सब क्या है सेठजी!' इस पर सेठजी ने कहा—'यह देखो बाबू' यह सब इस जूते का फल है!' यह कह उसने पैर से जूते उतार कर फेंक दिए। फेंकते ही वे जूते आकाश में उड़ गए!

चन्द्र नगर का राजा आनंद गजपति था। उसका मंत्री था शिवबुद्धि। शिवबुद्धि बहुत चतुर आदमी था। उसकी चतुराई के कारण ही राज्य में अतिशय सुख और शांति फैली हुई थी।

एक बार राजा गजपति के कलेजे में दर्द शुरू हुआ। बड़े बड़े वैद्यों की आशा छूट गई। आखिरकार रामजीवन नाम का एक गँवई गवाँर वैद्य आया, और उसने तीन रोज में राजा को भला चंगा कर दिया। रामजीवन पर खुश हो कर राजा ने उसे अपना राज्य-वैद्य बना लिया।

कुछ ही दिनों में रनवास में रानी साहबा बीमार पड़ीं। उस समय भी रामजीवन के भाग्य से कहो, या रानी साहबा की आयु से, रामजीवन की दवा से रानी साहबा दो-तीन महीने में भली-चंगी बन गईं। यह देख कर राजा ने उसका वेतन दुगना कर दिया। एक देहाती वैद्य रामजीवन को इतनी जल्दी पद-प्रतिष्ठा और धन-सम्पत्ति प्राप्त हो जाने के कारण वह गर्व से फूल उठा। अब वह किसी की परवाह नहीं करने लगा। हमेशा डींग हाँकने लगा—'मैंने तो राजा और रानी को मौत के मुँह से बचा लिया; मैं वैद्य नहीं देव हूँ!'

रामजीवन पहले, नित्य उठते ही औषधालय में जाता, और रोगियों की परीक्षा करके उन्हें दवा दिया करता था। धीरे-धीरे वह अपनी इच्छानुसार आने-जाने लगा। औषधालय के नाम पर राजा के यहाँ से उसे पाँच सौ की रकम मिली थी। उससे वह रोगियों के लिए दवा खरीदा करता था। लेकिन अब वह उस दवा को अपने घर पर आने वाले रोगियों को देने, और उनसे

शारदा मेहता

पसे वसूल करने लगा। बेचारे औषधालय के रोगी भगवान के भरोसे छोड़ दिए गए!

कुछ दिनों के बाद औषधालय के रोगियों ने मिल कर गुप्त रूप से रामजीवन के विरुद्ध एक अर्जी भेजी। राजा ने वह अर्जी मन्त्री को दिखाई। मन्त्री ने यह समझ कर कि यह उसकी पहली गलती है, रामजीवन के ऊपर कोई कार्रवाई नहीं की।

कुछ दिनों के बाद रामजीवन ने राजा के पास अर्जी भेजी कि उसे जो वेतन मिलता है, वह उसके लिए बस नहीं होता, और औषधालय की जो रकम मिलती है, रोज-रोज रोगियों के बढ़ने के कारण, वह भी कम पड़ जाती है। इसलिए जब तक यह रकम चौगुनी नहीं कर दी जाएगी, तब तक औषधालय चलाना मुश्किल हो जाएगा।

औषधालय के लिए 'रकम बढ़ानी चाहिए' यह दरख्वास्त देख कर राजा को गुस्सा आ गया। राजा ने रामजीवन को सूचित कर दिया, कि 'मन्त्री के साथ मैं खुद सात दिन के अन्दर-अन्दर औषधालय की जाँच करने आ रहा हूँ।'

कल राजा और मन्त्री आएँगे; और आज औषधालय में, जहाँ—कल तक रोगियों की संख्या नहीं के बराबर थी; वहाँ—न जाने कहाँ से बहुत से रोगी जमा हो गए। औषधालय रोगियों से भरा हुआ था। दूसरे दिन राजा बड़े तड़के मन्त्री के साथ आया; और औषधालय के सामने वाले कमरे में बैठ गया। दवाओं का खर्चा और रोगियों की संख्या वाली बहियों की जाँच करते-करते राजा ने रामजीवन को अपनी बातों में फँसाए रखा। रामजीवन ने अपनी वेतन-वृद्धि के लिए और औषधालय की रकम-वृद्धि के लिए राजा से अनेक प्रकार की प्रार्थना की। राजा सुनता रहा। यही समय देख

कर मन्त्री उठा और औषधालय के अन्दर आकर रोगियों को देखने लगा। मन्त्री को रामजीवन की सारी चालाकी मालूम हो गई।

एक रोगी के पलङ्ग के पास जाकर मन्त्री ने पूछा—'तुम्हारी बीमारी क्या है? कितने दिनों से तुमको यह तकलीफ हो रही है? मैं तुमको एक रामबाण औषध दूँगा—खाओगे?'

फौरन रोगी ने जवाब दिया—'इससे बढ़ कर अच्छी बात और क्या होगी! दीजिए न!' वह दीन होकर माँगने लग गया। यह सुन कर मन्त्री ने कहा—'यह एक अत्यन्त गुप्त-बात है, किसी से कहना मत! तुम से ही कहता हूँ!' यह सुन कर रोगी ने कहा—'मैं और किसी से नहीं कहूँगा!' कहते हुए उसने मन्त्री के हाथ पर अपना हाथ रख दिया! तब मन्त्री बोला—'मुझे यह दवा हिमालय के एक सिद्ध-योगी ने बताई थी। उस योगी ने बड़ी तपस्या के बाद यह सिद्धि प्राप्त की थी। मरने के पहले वह योगी मुझे यह रहस्य बता गया था। इतना कह कर मन्त्री चुप हो गया। 'वह रहस्य क्या है? बताओ तो भला!'— आतुर होकर रोगी बोला। यह सुन कर मन्त्री बोला—'तुम में जो सब से ज्यादा बीमार हो, और जिसके बचने की कोई उम्मीद न हो, उसको मार कर, जला कर, उसकी राख शहद में मिला कर खाय, तो सभी तरह की बीमारियाँ देखते-देखते छू-मन्तर हो जाती हैं! आदमी की बीमारी में आदमी ही दवा होता है—लेकिन समस्या तो यह है कि इस प्रकार मरने को तैयार कौन रोगी है यहाँ? वैसे त्यागी को सुनने के लिए राम जीवन दरवाजे पर खड़ा होकर—'जो बीमार नहीं है, बाहर आ जाय!' पुकारने को तैयार हो जाय और उसके बुलाने के बाद जो औषधालय

में रह जाएगा, उसे........' ऐसा कह कर मन्त्री चुप हो गया।

सभी रोगियों के पास जाकर मन्त्री ने यही उपदेश किया। सभी ने उस सिद्ध-पुरुष की दवा लेने की आतुरता दिखाई। सबों से यह कबूल करवा कर मन्त्री फिर राजा के पास आया—

'रामजीवन, महाराज औषधालय के रोगियों को देखने आए थे। लेकिन तुम ने तो उनको अपनी ही बातों में इतनी देर तक उलझा लिया! अब रोगियों को देखने, और उनसे बात करने का वक्त ही कहाँ रह गया है! इसके अलावा रोगियों के पास उनके बहुत-से आत्मीय-बंधु खड़े जान पड़ते हैं। अब वक्त नहीं रह गया है, इसलिए तुम औषधालय के दरवाजे पर खड़े होकर—'जो रोगी नहीं है, वह बाहर आ जाय!' ऐसे जोर से पुकारो जिससे सबों के कानों तक तुम्हारी आवाज पहुँच जाय। इस तरह रोगी अन्दर रह जाएँगे और निरोगी व्यक्ति बाहर आ जाएँगे। तब जो रोगी अन्दर पाए जाएँगे, उनको देखते ही महाराज तुम्हारी वेतन-वृद्धि की बात पर विचार करेंगे!'

मंत्री की सलाह वैद्य ने मान ली। उसी प्रकार रामजीवन ने जाकर पुकारा—सब कोई जिन्हें 'बीमारी नहीं है, वे सब रोगी बाहर आ जायँ।'

रामजीवन के पुकारते ही दस मिन्ट में औषधालय खाली हो गया। एक आदमी भी अन्दर नहीं रह गया। यह देख कर मंत्री राजा से कहने लगा—'महाराज, निरोगी आदमी सब बाहर आ गए हैं; अब चल कर हम रोगियों को देख लें।'

जब राजा, मंत्री और वैद्य अन्दर पहुँचे तो रोगियों के पलंग पर एक भी रोगी नहीं दीख पड़ा!

4

[कुंडलनी द्वीप के राजकोष में धन-संचय करने के लिए कुंडलनी द्वीप के सैनिक दूसरे राज्यों में लूट-मार करने के लिए गए। रवाना होने के समय एक पुच्छल-तारा दीख पड़ा; जो अपशकुन का चिन्ह था। समुद्र के बीच पहुँच कर जहाज़ डूब गए। समरसेन और कुछ सैनिक एक द्वीप में पहुँचे। वहाँ भयंकर जानवरों और एक आँख वाले मांत्रिक से बच कर वे लोग भाग निकले—आगे पढ़िए :]

समरसेन अपने सैनिकों के साथ दौड़ते-दौड़ते एक पहाड़ के पास पहुँचा। अब उन लोगों को उस एक आँख वाले मांत्रिक का भयङ्कर कण्ठ-स्वर सुनाई नहीं पड़ता था। उन लोगों ने सोचा—'जान बची, लाखों पाए!' इसके अतिरिक्त चतुर्नेत्र वाले का वह दूत की तरह काम करने वाला काला उल्लू और वह नर-वानर— दोनों क्या हो गए! उसका उन्हें पता नहीं चला। लेकिन उन लोगों को इतना तो विश्वास हो गया, कि वे उनका पीछा नहीं कर रहे हैं। आज जाकर उन लोगों ने कुछ सुख की साँस ली।

इसके बाद यह समस्या उठ खड़ी हुई, कि अब क्या करना चाहिए! सब लोगों के मन में एक ही बात चल रही थी कि अब किसी आफ़त में पड़े बग़ैर चाहे जिस प्रकार भी हो, इस मन्त्र-द्वीप से निकल जायँ! लेकिन इस द्वीप से जाया जाय कैसे!

का ज्ञान नहीं होता, तब कैसे पता चले कि वे लोग कहाँ हैं!

समरसेन जब इस संकट-जाल में पड़ा हुआ था कि अकस्मात आकाश के बादल फट गए और सूर्य का दर्शन हुआ। सूर्य को देखते ही फौरन समरसेन को मालूम हो गया कि वे लोग इस समय द्वीप की किस दिशा में पड़े हुए हैं।

'हम लोग इस समय इस मन्त्र-द्वीप के पश्चिमी भाग में हैं; और हमारे जहाज पूरबी भाग में खड़े हैं। इस समय हमारी हालत ऐसी है।' समरसेन ने अपने संगी-साथियों से कहा।

'हमारी भलाई तो अब इसी बात में है, कि हम किसी तरह तकलीफ उठा कर द्वीप के पूरबी भाग में पहुँच जायँ!' सैनिकों में से एक ने समरसेन के आगे अपना उद्देश्य प्रगट किया।

'बहुत अच्छा! लेकिन वहाँ तक पहुँचना क्या आसान काम है! कितनी विघ्न-बाधाएँ हैं। नाक की सीध में जाना चाहें तो इसका कोई उपाय नहीं! एक तो जङ्गल-पहाड़, दूसरे खूँखार जानवर—उन लोगों के मुँह से बच कर निकल सकें, तब तो उस ओर

उन लोगों ने जो जहाज छोड़े थे—वे कहाँ हैं, और वे लोग इस समय द्वीप की किस दिशा में हैं, यह भी उन्हें नहीं मालूम हो रहा था। द्वीप को चारों ओर से घोर जङ्गल घेरे हुए थे; और वे लोग उसके बीच में पड़े थे; फिर दिशाओं का पता कैसे चले! पेड़ पर चढ़ कर देखने से पहाड़-ही-पहाड़ नजर आते थे। आकाश की ओर देखने से बड़े-बड़े वृक्ष ही वृक्ष दीख पड़ते थे, और उन वृक्षों को लपेटे थी सघन लताएँ। ऐसे भयङ्कर प्रदेश में चारों ओर से असहायावस्था ही घेर कर खड़ी थी। अब तक दिशाओं

पहुँच सकें।' कह कर समरसेन ने एक गहरी साँस छोड़ी।

जब सबों के सरदार समरसेन की यह हालत थी, तो सैनिकों की हालत क्या कही जाय! वे तो निष्प्राण से ही हो गए थे।

यह देख कर समरसेन ने तुरत कहा—'तुम लोगों ने जैसा कहा, मुझे भी पूर्वी भाग में पहुँचना ही कल्याणकारी दीखता है; तो हम वही करें! मुसीबत से तो लड़ना ही है। इस लिए हिम्मत हारने से काम नहीं चलेगा। हमारे हाथ में तलवार है, और है—कुण्डलनी देवी की दया! इन दोनों रक्षकों के होते हुए हमें किसी बात का डर नहीं। आओ, सब लोग मेरे पीछे-पीछे चले आओ!!'—यों कहता और सबों को प्रोत्साहित करता हुआ समरसेन जोश के साथ आगे-आगे चल पड़ा और उसके पीछे-पीछे चल पड़े सब सैनिक लोग।

वे लोग चार कदम भी नहीं गए होंगे कि समरसेन एकाएक रुक गया और सैनिकों को हाथ का इशारा करता हुआ-सा बोला—'रुक जाओ!' जैसा उसने सोचा था, उसके सामने एक भयङ्कर दृश्य दिखाई पड़ा। वह दृश्य देख कर कैसा भी साहसी व्यक्ति

नहीं रह सकता था। एक बड़ा अजगर एक पेड़ की डालों से धीरे-धीरे नीचे की ओर खिसक रहा था। उसी पेड़ के नीचे दो चीते अजगर का नीचे आना न जानते हुए चुप-चाप खड़े हुए थे।

ये लोग देख ही रहे थे कि अजगर ने बाघों में से एक की गर्दन पकड़ ली। फिर उसने उस बाघ के शरीर को इस तरह लपेट लिया जैसे खूंटा ठोक दिया गया हो! यह देख कर दूसरा चीता डर कर वहाँ से दूर भाग गया। लेकिन भागा हुआ वह दूसरा चीता जाने क्या सोच कर दौड़ कर फिर आ गया; और उस अजगर के ऊपर कूद पड़ा।

'तुरत चल दें हम लोग यहाँ से। इस तरह की आफत से अपने को बचा लेना ही अच्छा है' समरसेन ने अपने सैनिकों को सावधान किया। और सब लोग आगे बढ़ने को तैयार हुए।

उसके बाद सैनिक आगे बढ़े और उन्होंने एक दूसरी राह पकड़ ली। वह रास्ता सुविधाजनक नहीं था। चलना बहुत कठिन हो गया। पहाड़ों से अनेक झरने झर रहे थे; और चारों ओर की ज़मीन कीचड़ ही कीचड़ दीख पड़ती थी। इस के फलस्वरूप जहाँ देखो वहाँ घने नल बन और बांसों की कोठियाँ खड़ी हुई थीं। वहाँ घुटनों तक नागरमोथा उगा हुआ था। इन लोगों को उसी में से होकर चलना था। उसी रास्ते से अपने प्राणों को हथेलियों पर रख कर सैनिक-गण वहाँ से आगे की तरफ़ चल खड़े हुए।

सदा की तरह समरसेन आगे-आगे चलने लगा; और साथ ही सैनिकों को ढाढ़स बँधाता जाता था। कुछ दूर जाने के बाद समरसेन ने कहा—इस प्रदेश में मालूम होता है पानी की बहुतायत है। जल-जन्तु

बार-बार हमारे रास्ते में आते हैं। लेकिन हमें जङ्गली जानवरों से डर लगा रहता है। इन जल-जन्तुओं से डरने की जरूरत नहीं!' यह बात पूरी होते-न-होते बगल के नल-वन से एक गैंडा निकल पड़ा। उसको देखते ही सैनिक भाग खड़े होने के लिए इधर-उधर देखने लग गए। यह देखते ही समरसेन ललकार कर उन लोगों से यों कहने लगा—

'भागने से हमारा संकट और बढ़ जाएगा। खड़ा रहना ही अच्छा है। एक कदम पीछे हट कर तलवार हाथ में लेकर हम कतार से खड़े हो जायें' समरसेन ने सलाह दी।

गैंड़े ने सिर उठाया और भयंकर आवाज से गरजते हुए आगे की ओर एक कदम उठाया। यह देखते ही सैनिक लोग थर-थर काँपने लग गए।

गैंड़े ने दूसरा कदम उठाया। और प्रचण्ड वेग से वह उन लोगों पर टूट पड़ा।

यह देख कर समरसेन ने भी तलवार निकाल कर प्रचण्ड-वेग से उसके ऊपर आघात किया। कोई और जानवर होता तो उस आघात से अवश्य ढेर गया होता। लेकिन

गैंडे को उस से कुछ भी नहीं हुआ। उल्टा समरसेन ने जो काम किया उस से वह जङ्गली जानवर और भी गुर्रा उठा और फिर एक बार पैर बढ़ा कर सैनिकों की ओर उछला।

अब की बार सैनिक ज़रा भी नहीं डरे। उनके नायक समरसेन ने जो साहस दिखाया था, उस से उन में भी साहस आ गया। चार आदमी चार ओर हो गए, दो उसके पेट में घुस गए, और उसे भोंक-भोंक कर जर्जर कर दिया। गैंडा एक ओर गिरा और छटपटाता तथा भयङ्कर आवाज से जंगल-पहाड़ को कँपाता ठंडा हो गया।

समरसेन ने अपने लोगों से कहा—'अब जाकर यह बला टली—अब फ़ौरन यहाँ से चल देने में ही भलाई है।' ऐसा कह कर समरसेन तुरत वहाँ से रवाना हो गया। कुछ दूर जाने पर उन लोगों को एक झील दीख पड़ी। उसे देखते ही लोगों ने सोचा—जाकर नहाएँ धोएँ और प्यास बुझाएँ। सैनिकों में से एक ने कहा—'कितना अच्छा पानी है यह! अगर इस निर्मल जल में एक डुबकी लगालें तो कितना अच्छा हो!'

यह सुन कर समरसेन ने कहा—'यह मन्त्र-द्वीप है, खबरदार यह बात मत भूलना!'

इस तरह उसने लोगों को चेतावनी दी। फिर भी दो सैनिक झील में उतर ही पड़े।.... एक क्षण में सारा पानी हिलने लग गया। सहसा चार-पाँच मगर उनके ऊपर टूट पड़े। उन लोगों ने भय से चिल्लाना शुरू किया। किनारे पर खड़े समरसेन और उसके सैनिकों ने मगरों पर बाण छोड़े; लेकिन सब व्यर्थ हुआ। उन दोनों सैनिकों को मगर झील के अन्दर खींच ले गए।

यह विषाद-पूर्ण दृश्य देख करके सबों के प्राण सूख गए। उदास मुख से समरसेन अपने शेष-सैनिकों के साथ वहाँ से चल पड़ा। इस बार वे लोग बड़ी सावधानी से इधर-उधर देखते चलने लगे। कुछ दूर जाने के बाद ठीक उन लोगों के सामने एक बड़ा सरोवर खड़ा दीख पड़ा।

'यह तो बहुत बड़ा तालाब मालूम होता है! इसे कैसे पार किया जाय!' समरसेन सोच में पड़ गया। इतने में तालाब का पानी इस तरह हिलोरें लेने लगा—जैसे कोई नहा रहा हो। लेकिन देखने से कोई कहीं दिखाई नहीं पड़ता था। तालाब के दूसरे तट पर एक पेड़ की शाखा दीख पड़ रही थी। उस शाखा से एक लम्बी टोपी लटक

रही थी। उसमें आदमी की आँखों की तरह दो सूराख दीख रहे थे।

यह दृश्य देख कर सब सैनिक स्तब्ध रह गए। सिपाहियों की बात क्या—खुद समरसेन स्तब्ध था और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या बला है! तालाब का पानी अब भी हिलोरें ले रहा था। देखने से यह साफ जान पड़ता था कि उस में कोई एक अदृश्य व्यक्ति स्नान कर रहा है!

समरसेन और सैनिक एक झाड़ी की आड़ से यह सब दृश्य देख रहे थे—'कहीं यह वही एक आँख वाला मांत्रिक तो नहीं है।'

समरसेन को ऐसा शक हुआ। इस सन्देह में अब समरसेन और सैनिक झूल रहे थे कि और एक दृश्य उनके सामने आ खड़ा हुआ। सरोवर के किनारे, झाड़ियों की आड़ से, एक साँप सिर उठाता हुआ दिखाई पड़ा। वह एक अत्यंत विचित्र जन्तु था। उसका डील-डौल देखने में चार-पाँच हाथियों के बराबर था। इतने बड़े जानवर का सिर इतना पतला....!

अब क्या होगा! टिकटिकी लगा कर सब देखने लग गए। वह धीरे-धीरे अपने पतले सिर को सरोवर के अन्दर डालने लगा। यह कहने की कोई जरूरत नहीं कि वह जानवर उस व्यक्ति को पकड़ने आ रहा था, जो अदृश्य होकर सरोवर में नहाता-सा जान पड़ता था।

वह पानी में सिर डाले एक गज भी नहीं गया होगा कि एक भयङ्कर चीख सुनाई पड़ी। चीख का सुनाई देना और पेड़ की डाल से लटकती हुई लम्बी और आँखों वाली टोपी का नीचे खिसकना एक-साथ शुरू हो गया।

इतने में झील में से एक आदमी निकला और वह टोपी पहनने लगा। उस आदमी को देखते ही वह अपूर्व जन्तु नौ दो ग्यारह हो गया। 'अरे, तू है महोदरा! मुझी को खाने चला था। चार आँख वाले को ही निगल जाने की बात सोची थी!!' यह बात सरोवर के अन्दर से सुनाई पड़ी।

समरसेन और उसके सैनिक थर-थर काँपने लग गए। क्योंकि एक आँख वाले उस मांत्रिक का यह चार आँख वाला जानी-दुश्मन था। अब इस से कैसे जान बचाई जाय....! समरसेन इस विचार-सागर में डूब गया। (अभी और है)

राज-भक्त

उस समय विदर्भ देश का राजा जयपाल था। वह राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत् मानता था। इसलिए उस राज्य में चारों ओर सुख और शांति फैली हुई थी।

एक दिन जयपाल अपने परिवार के साथ जङ्गल में शिकार खेलने गया। जङ्गल में एक बाघ का पीछा करते वह बहुत दूर निकल गया। परिवार के लोग उसके साथ नहीं आ सके; पीछे रह गए।

आखिर ऊब कर जयपाल ने धनुष पर बाण चढ़ाया और बाघ पर छोड़ दिया। लेकिन उसका निशाना चूक गया।

बच निकलना हो तो बाघ के ऊपर दूसरा बाण छोड़ना चाहिए। उसके पहले ही बाघ अगर उसके ऊपर उछल पड़ा.... तो! चोट खाया हुआ वह बाघ शिकारी के ऊपर क्रोध से आग बबूला हो कर उसको धर दबोचने की तैयारी करने लगा।

फौरन बाघ घूम पड़ा और तीर की तरह वह जयपाल के ऊपर टूटा। उस के आघात से जयपाल का घोड़ा जमीन पर गिर गया, और जयपाल पास की एक झाड़ी में जा गिरा। उठ के फिर एक बाण मारने की गुँजाइश न रह गई थी। अब वह बाघ के मुख में जाएगा, इस का उसे निश्चय हो गया....

उसी समय अकस्मात् एक ब्राह्मण पास के एक पेड़ पर से कूद पड़ा; और पल मारते एक कुल्हाड़ी लेकर बाघ के ऊपर उछला और उसका सिर काट लिया। जयपाल को यह सब एक स्वप्न की तरह मालूम हुआ।

निर्मल कुमार

होश में आने पर जयपाल ने उस ब्राह्मण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट की। उसके धैर्य और साहस की उसने बड़ी तारीफ़ की। फिर उसने अपने रक्षक की राम-कहानी भी सुनी। वह ब्राह्मण बहुत गरीब था। उसके घर में पत्नी और दो बच्चे थे। उनके पालन-पोषण के लिए वह रोज जङ्गल जाकर लकड़ियाँ काटता और बाजार में बेच दिया करता था। उसका नाम था रामशर्मा।

रामशर्मा के ऊपर जयपाल की श्रद्धा-भक्ति बढ़ी। उसने फौरन सपरिवार उसे अपनी राजधानी में बुला भेजा, और उसे अपने रक्षक-दल का प्रधान बना दिया।

रामशर्मा की गरीबी यों दूर हो गई और वह बहुत सुख-पूर्वक रहने लगा। उसके बच्चे बड़े होने लगे।

ऐसे समय एक दिन रात होने पर जयपाल ने रामशर्मा को बुला भेजा। उसे ऊपर ले जाकर राजा यों कहने लगा—'शर्मा! क्या कोई शब्द सुनाई पड़ता है तुम्हें! जरा ध्यान से सुनो तो सही....!'

वह अँधेरी रात अत्यंत निस्तब्ध थी। वहाँ कुछ नहीं सूझ रहा था। बहुत सावधानी से सुने बगैर कुछ भी नहीं मालूम होता था!

कुछ देर के बाद रामशर्मा ने जवाब दिया—'हाँ, महाराज! उत्तर की ओर कोई धीरे-धीरे रो रहा है। आवाज पर गौर करने से वह कोई स्त्री मालूम होती है।'

'हाँ....शायद बहुत दूर से वह आवाज आ रही है। इसलिए वह साफ़-साफ़ नहीं सुनाई दे रही है!' जयपाल ने कहा। रामशर्मा ने सिर हिला कर हामी भरी।

'मेरे राज्य में यदि किसी को कष्ट हो, तो मुझे फौरन उसकी सुध लेनी चाहिए।

इसलिए तुम जाकर इसकी खबर लगा आओ ' रामशर्मा से राजा ने कहा।

राम शर्मा फौरन रवाना हुआ। घोरांधकार था। आँखें फाड़ने पर भी रास्ता नहीं सूझता था। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी हाथ में तलवार लिए हुए वह रोने की आवाज़ का अनुसरण करने लगा। उस निर्जन-प्रदेश में वह बड़े साहस के साथ चला जा रहा था। बीच बीच में रुक कर वह देख लेता था कि ठीक आवाज़ की ओर ही जा रहा है न !

इधर रामशर्मा के जाने के बाद राजा सोच-विचार में पड़ गया—' क्या ! रामशर्मा सचमुच अकेले जाकर खबर ला सकेगा ! या घर जा कर सो रहेगा ; और सबेरे घूम-फिर कर आ जाएगा और कुछ बातें बना देगा ...!' रामशर्मा के धैर्य-साहस पर राजा का अविश्वास नहीं था। लेकिन कहीं वह आलस्य-वश टाल-मटोल न कर दे....! यह शंका ज़रूर थी उसके मन में।

सोच-विचार कर जयपाल भी छिपता-छिपता रामशर्मा के पीछे-पीछे चलने लगा। ' अगर कहीं रामशर्मा के ऊपर कोई आफ़त आ पड़ी, तो वह उसकी सहायता तो कर सकेगा ! जिसने एक बार उसके प्राण बचाए थे उसके प्रति कृतज्ञता बताने का कुछ मौका तो मिल जाएगा ' उसने अपने मन में सोचा।

रामशर्मा ठीक उत्तर दिशा की ओर चला जा रहा था। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता जा रहा था; स्त्री के रोने की आवाज़ भी साफ़ सुनाई पड़ने लग गई थी। अब उसे यह विश्वास हो गया कि वह ठीक रास्ते पर चल रहा है, तो उसने अपनी चाल और तेज़ कर दी।

जाते-जाते रामशर्मा गाँव की समशान-भूमि में पहुँचा। राज-भक्त राम शर्मा ज़रा

भी नहीं डरा ! वह धीर तो था ही; साथ ही एक अच्छा काम कर रहा है, यह विचार उसके धैर्य को और भी दृढ़ बना रहा था।

मरघट के बीच एक स्त्री रो रही थी। रामशर्मा ने उसके पास जाकर पूछा।

'माँ ! तुम कौन हो ? राजा ने यह सब जानने के लिए मुझे तुम्हारे पास भेजा है !' उसने बड़ी नम्रता से उस स्त्री से कहा।

'मैं कोई भी हूँ, इस से तुमको क्या ? क्या मेरी ज्वाला बुझा सकोगे ? क्या मेरी पीड़ा दूर कर सकोगे ?' स्त्री ने कहा।

'यह क्या कहती हो माँ ? हमारे राजा अपनी प्रजा को संतान की तरह देखते हैं। मेरा दृढ़-विश्वास है कि वे तुम्हारे कष्ट को भी बड़ी आसानी से दूर कर देंगे' रामशर्मा ने बड़े उत्साह से कहा।

'अच्छा, तो सुनो मैं भूदेवी हूँ। एक हफ्ते के बाद राजा मर जाएगा। जिसने इतने दिनों तक अत्यन्त प्रेम से मेरा पालन-पोषण किया; अब मुझे छोड़ कर वह चला जाएगा।.... इसी दुःख से मैं रो रही हूँ' भूदेवी ने गद्गद् होकर कहा।

रामशर्मा निश्चेष्ट हो गया। फिर ज़रा सम्भल कर उसने पूछा—'क्या राजा के बचाने का कोई उपाय नहीं है ?'

'उपाय है क्यों नहीं, ज़रूर है। लेकिन करने का साहस कौन करेगा ?' उस ने कहा।

'बोलो- मैं करूँगा' बड़ी दृढ़ता से रामशर्मा ने कहा।

'मरघट के उस छोर पर भद्र-काली का एक मंदिर है। अगर उसके सामने किसी ब्रह्मचारी की बलि दे दी जाय, तो राजा का यह संकट टल जाएगा; और वह परमायु प्राप्त करेगा' भूदेवी ने उससे कहा।

'नगर में बहुत से ब्रह्मचारी हैं, लेकिन क्या कोई अपने पुत्र की बलि देना स्वीकार करेगा ?' यह प्रश्न उसे पकड़े हुए था। इतने

में रामशर्मा को एक ज्योति सी दीख पड़ी। उसने सोचा—'मेरा बेटा भी तो ब्रह्मचारी है। किसी से माँगने की अपेक्षा उसी की बलि दे कर राजा के प्राणों की रक्षा क्यों न कर ली जाय !

लेकिन उसके अन्दर की ममता बार-बार उसे हिला देती थी। देखते देखते अपने प्रिय पुत्र की बलि दे देना— हृदय में कोलाहल उठे बिना कैसे रहता........लेकिन दूसरा उपाय भी तो नहीं था। बेटा गया तो सिर्फ एक उसी को दुख होगा........लेकिन राजा गया तो समस्त राज्य में कोलाहल और विप्लव मच जाएगा। इसलिए समस्त जन-कल्याण के लिए रामशर्मा ने बेटे की बलि देने का निश्चय कर लिया।

यह निश्चय होते ही वह जल्दी-जल्दी चलने लगा। घर पहुँचते ही उसने अपने बेटे को उठाया और स्नान करके, पवित्र होकर, अपने पास आने को कहा। पिता की बात कभी न टालने वाला वह पुत्र— उससे जैसा कहा गया, उसने वैसा ही किया। रामशर्मा जो करने जा रहा है, उसने अपनी पत्नी को भी उसका पता न लगने दिया।

बेटे को लेकर वह भद्रकाली के मन्दिर में पहुँचा। देवी को आरती दिखा कर उसने बेटे से सारी बातें कह सुनाईं। यह सुन कर बेटे ने बड़े उत्साह से कहा—'पिताजी! इससे बढ़ कर मेरे लिए सौभाग्य और क्या होगा! शीघ्र मुझे देवी के चरणोंपर चढ़ा दीजिए!'

पिता ने पुत्र को देवी के सामने झुका दिया। फिर अमित धैर्य से तलवार निकाल कर उसके ऊपर वार करने को तैयार हो गया। एक ही क्षण में बेटे का सिर धड़ से अलग हो जाने वाला था, कि हठात् किसी ने दृढ़ता से उसका हाथ पकड़ लिया।

पीछे मुड़ कर देखता है—तो सामने स्वयं भद्रकाली खड़ी थी। उस देदीप्यमान प्रकाश पुंज के सामने आँखें मूँद कर रामशर्मा दण्डवत हो गया!

'शर्मा! तुम्हारी भक्ति से मैं अत्यन्त संतुष्ट हो गई हूँ। अब बेटे की बलि देने की जरूरत नहीं। तुम्हारी इच्छा अब यों ही पूरी हो जाएगी।' कह कर काली अंतर्धान हो गई।

रामशर्मा बेटे को घर में रख कर अत्यन्त संतोष के साथ राज-भवन जाने को तैयार हुआ।

यह सब विचित्र बातें तो राजा जयपाल देख ही रहा था। अतएव रामशर्मा के पहुँचने के पहले ही वह राज-महल में जाकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

रामशर्मा ने आकर निवेदन किया—'प्रभो! वहाँ ऐसी कोई बात नहीं थी। एक अभागिनी औरत, अपने बेटे की मौत हो जाने से, रो रही थी; उसे ढाढ़स बँधा कर आ गया हूँ, सिर्फ इतनी ही बात थी!' जयपाल को सच्ची सच्ची बातें तो मालूम थीं ही; फिर भी उसने ऐसा भाव दिखाया जैसे वह रामशर्मा की बातों पर विश्वास कर रहा हो!'

दूसरे दिन दरबार में गत रात की सारी बातें बता कर राजा ने कहा—'रामशर्मा ने फिर एक बार मुझे प्राण दान दिया है! लेकिन वह अपने मुँह से अपनी प्रशंसा कभी नहीं करता। मुझे मालूम नहीं होता है कि ऐसे स्वामी-भक्त और महान-त्यागी का ऋण मैं कैसे चुका सकूँगा!' ऐसा कह कर राजाने उसका अपूर्व सम्मान किया और उसे सब से ऊँचे ओहदे पर नियुक्त किया।

राजा ने रामशर्मा का जो सम्मान किया, उससे सब लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। उस की राज-भक्ति देश-देशांतर में व्याप्त हो गई।

पहेलियाँ

विद्यावती अग्रवाल

★

पी में गर्क स्वाद में मीठा
बिन बेले का बेला है,
कहे बीरबल सुनो जी अकबर
यह भी एक पहेला है।

नेकसी थोड़ी लम्बी लगाम
चलि मेरी सुसरी, एक दूर गाँव।

एक थाल मोती से भरा
सब के सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे
मोती उससे एक न गिरे।

धूपों से वह पैदा होवे
छाँव देख मुर्झावे—ऐरी सखी!
मैं तुझसे पूछूँ हवा लगे मर जावे।

चलती है पर बोलती नहीं,
हाथ है, पर पैर नहीं।

मैं इतनी बड़ी हुई, पर
पड़ोसी के कभी नहीं गई।

चार खड़े थे, चार बैठे थे,
एक एक के मुँह में दो भरे थे।

किसी गाँव में आग लगी,
किसी गाँव में कुआँ,
किसी गाँव में बाँस गड़े
और किसी गाँव में धूआँ।

एक नार ने अचरज किया
साँप मार पिंजड़े में दिया,
ज्यों-ज्यों साँप ताल को खाए
सूखे ताल—साँप मर जाए।

पानी में निस दिन रहे जाके
हाड़ न माँस, काम करे तलवार
का फिर पानी में वास।

एक नार दो को ले बैठी
टेढ़ी होके बिल में पैठी।
जिस के पैठे उसे सुहाय
'खुसरो उसके बल-बल जाय।

उत्तर के लिए
छत्तीसवाँ पृष्ठ देखिए।

अब हम नव निमाण करेंगे

★

अब हम नव निर्माण करेंगे !
ज्ञान-दीप को कर में लेकर,
घर घर जाकर, अलख जगा कर,
शिक्षा से भण्डार भरेंगे !
अब हम जग-कल्याण करेंगे !
स्वर्ण युगों की कथा-कहानी
किसने देखी—किसने जानी !
अपने युग की स्वर्ण गाथा का
सब मिल कर निर्माण करेंगे !
प्राची ने अब ली अंगड़ाई,
हुआ जागरण लाली छाई ।
नव-युग के इस नव-प्रभात में
जीवन का आह्वान करेंगे !
स्वर्ग दूर है—नहीं चाहिए,
इस धरती पर हर्ष चाहिए ।
इसी धारा को मार्ग बना कर
मानव का उत्थान करेंगे !
बापू का आदेश यही है,
बापू का संदेश यही है;
अपने सुदृढ़ हाथों से हम
दृढ़ भारत निर्माण करेंगे !

विज्ञान पढ़ो !

[कीर्ति नारायण मिश्र 'किशोर']

★

विज्ञान पढ़ो ! विज्ञान पढ़ो !!
बोले गुरुवर, दे कान सुनो—
विज्ञान पढ़ो ! विज्ञान पढ़ो !!

हैं इसमें कितने तत्व भरे
हैं इसमें कितने सत्व नये,
इसको पढ़ कर नव ज्ञान गढ़ो !
विज्ञान पढ़ो ! विज्ञान पढ़ो !!

जो पढ़ता है विज्ञान आज
उसके होंगे सब सिद्ध काज,
इसमें ही अब स्वर तान भरो !
विज्ञान पढ़ो ! विज्ञान पढ़ो !!

जो है सम्प्रति विज्ञान पढ़ा,
उसका सचमुच है नाम बड़ा
जीवन का नव निर्माण करो !
विज्ञान पढ़ो ! विज्ञान पढ़ो !!

पहेलियों के उत्तर :

मालपुआ, सुई डोरा, आकाश,
पसीना, कमीज, दीवार, दीपक,
हुक्का, कुम्हार का डोरा, पायजामा।

बुढ़िया की कुर्सी

एक समय किट्टू नाम का एक लड़का था। देखने में तो लड़का ही था; लेकिन उसके काम बड़े विचित्र हुआ करते थे। एक बार उसने मिर्च का बीज बोया। न जाने यह कैसा अद्भुत काम था; मिर्च के पौधे में मीठे फल लगे। किट्टू को देख कर बूढ़े और बालक सभी खुश हो जाते थे। इसलिए सब लोग उसे किट्टू भैया कह कर बुलाया करते थे।

किट्टू से यह काम हो सकता है और यह नहीं हो सकता—य नहीं कहा जा सकता था। किसी का कोई काम हो, कहने के साथ वह कर डालता था। पास में पैसे हों या न हों, हमेशा शान से रहा करता था। किट्टू भैया को चारों ओर से हमेशा बच्चे, कुत्ते, बिल्ली घेरे रहा करते थे। वह कभी अकेला नहीं दीख पड़ता था।

एक दिन किट्टू भैया लकड़ी काटने जङ्गल गया। एक बड़े पेड़ को काटते सूरज सिर पर आ गया। उसे बड़ी भूख लगने लगी। वह वहीं बैठ कर नाश्ता करने लग गया। उसे खाते देख कर जङ्गल की चिड़ियाँ वहाँ जमा हो गईं। झाड़ियों से निकल कर खरगोश और चूहे आने लगे। वह सबों को रोटी के टुकड़े बाँटने लगा। ये सब खा कर खुशी खुशी अपनी-अपनी जगह चले गए।

उनके चले जाने के बाद हठात किट्टू भैया के सामने बाग-बगीचे वाला एक सुन्दर महल खड़ा हो गया। महल के दरवाजे पर एक काली बिल्ली बैठी हुई थी।

आश्चर्य से देखते हुए किट्टू भैया जैसे ही वहाँ पहुंचा वैसे ही एक बुढ़िया दरवाजा खोल कर वहाँ आई और बोली—'बाबू! तुम्हारे पास बहुत अच्छी कुल्हाड़ी दीख पड़ती है। क्या कुछ मेरी लकड़ियाँ भी

रविन्द्र चौबे

फाड़ दोगे!' यह सुन कर किट्टू भैया ने कहा—'बहुत अच्छा दादी! बड़ों की सेवा करने की अपेक्षा और उत्तम काम क्या हो सकता है!' ऐसा कह कर उसने बुढ़िया के दिखाए हुए पेड़ की लकड़ियाँ चीर-फाड़ कर बुढ़िया के सामने जमा कर दीं।

उसकी श्रद्धा-भक्ति देख कर बुढ़िया बहुत खुश हुई और बोली—'बाबू! तुमने जो कुछ किया है, बड़े ही उत्तम-ढङ्ग से किया है। अपनी मेहनत के लिए तुम्हें क्या चाहिए!' इस पर किट्टू भैया ने कहा—'मैंने कोई बड़ा काम तो किया नहीं; देना ही चाहती हो तो एक घूँट पानी पिला दो!'

बुढ़िया ने किट्टू को अन्दर बुलाया। वह मर्यादा-रक्षा के लिए जूते खोल कर भीतर गया। बुढ़िया ने एक गिलास मीठा दूध पीने को दिया, और बोली—'बाबू! तुमको और तुम्हारे सद्गुणों को देख कर मेरी खुशी का ठिकाना नहीं है! देखो, इस घर में जो-जो चीज़ें दीख पड़ती हैं, उनमें से तुम क्या चाहते हो!'

चारों ओर देख कर किट्टू भैया ने एक कोने में पड़ी एक आराम कुर्सी देखी। बुढ़िया ने उसके मन की हल-चल को पहचान लिया और बोली—'बाबू! मैं जो चीज़ तुम्हें देना चाहती थी, ठीक वही चीज़ तुम ने पसन्द की है!' यह बड़ी महिमामयी कुर्सी है। इसे तुम उठा ले जाओ; इससे तुम्हारा सौभाग्य और कीर्ति बढ़ेगी....!'

किट्टू भैया ने बूढ़ी को प्रणाम किया, कुर्सी कन्धे पर रखी, और बार-बार पीछे मुड़कर देखता जाने लगा। उसके देखते-देखते वह बाग-बगीचे वाला भवन गायब हो गया!

घर पहुँच कर किट्टू भैया मजे से कुर्सी पर बैठने के लिए आतुर होने लगा। कुर्सी को उसने खूब पोंछा-वाछा और एक साफ़-

सुथरी जगह पर रखा। फिर उस पर बैठने की तैयारी में था ही कि, उसका प्राणप्रिय मित्र सीवू वहाँ आ पहुँचा। सीवू हर रविवार को किट्टू भैया के घर जरूर आया करता था। उसी तरह आज भी वह आया था। बेचारा सीवू अन्धा था इसलिए उसको कोई भी अपने पास नहीं आने देता था। लेकिन किट्टू भैया उसे प्राणों से बढ़ कर मानता था।

इसलिए सीवू के आते ही किट्टू ने उस दिन की सारी बातें उसे सुना दीं; और जो कुर्सी उसे मिली थी उसके ऊपर उसे आदर से बिठा दिया।

सीवू थोड़ी ही देर उस कुर्सी पर बैठा होगा कि इधर-उधर झूलने लगा और धीरे-धीरे मृदुल-मधुर राग से गुनगुनाने लग गया! उसका वह गान अद्भुत था। उसे सुन कर किट्टू ऐसा मग्न हुआ कि उसको अपनी देह की सुधि तक न रही और वह जड़वत् बैठा हुआ सुनता रहा!

दोपहर के दो बजे होंगे कि सीवू का गाना बन्द हुआ। वह कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। उसी समय सीवू को किसी की वाणी सुन पड़ी—'सीवू! इतने दिनों से हम लोग एक दूसरे के गाढ़े मित्र ही रहते आए हैं न! लेकिन तुमने कभी बताया भी था कि तुम इतने मधुर-राग से गा सकते हो!' किट्टू के इस प्रश्न पर सीवू ने कहा—'किट्टू भैया! सचमुच मुझे गाना नहीं आता! लेकिन मैं आज कैसे गा सका, यह मेरे लिए भी आश्चर्य की बात है!'

इस तरह सीवू प्रति रविवार को किट्टू के घर आता—उस कुर्सी पर बैठता, और गन्धर्वों से भी बढ़ कर सुन्दर-संगीत गाया करता! ठीक दोपहर के दो बजे वह गान बन्द हो जाता था। इस प्रकार किट्टू उस संगीत-धारा में ऐसा मग्न हुआ और सीवू के ऊपर उसका प्यार इतना बढ़ा कि उसने

निश्चय कर लिया, कि ये कुर्सी सीबू की है। सीबू के सिवा कोई इस पर नहीं बैठ सकता; कोई क्या—मैं भी खुद नहीं बैठ सकता!

'सीबू गा सकता है!' यह बात सीबू और किट्टू के सिवा और कोई नहीं जानता था। कुर्सी पर बैठे हुए जैसा वह गाता था वैसा भी वह दूसरे समय गाए—इसके लिए उसने बहुत कोशिश की, लेकिन उसे सफलता कभी नहीं मिली। हमेशा गधे की तरह रेंकने लग जाता था।

ऐसी हालत में—

उस देश का राजा बीमार पड़ा। मुँह में एक दाना भी नहीं जाता था। हमेशा चिंता में मग्न रहा करता था। दरबार के हास्यरसावतार लोग आ-आ कर अपने हास्य-विद का प्रदर्शन करते थे लेकिन राजा के मुख पर कभी हँसी नहीं छिटकती थी।

बड़े-बड़े वैद्य-हकीम आकर देखते, और कहते—'इस बीमारी का सम्बन्ध शरीर से नहीं है। जब तक कोई अद्भुत चीज इनके सामने नहीं रखी जाएगी, इनकी मति नहीं बदलेगी।'

उनकी सलाह के मुताबिक राजा के परिवार के लोग देश-देशान्तर भटकने लगे। कई लोग कई अद्भुत चीजें ले आए, लेकिन राजा के ऊपर किसी चीज का कोई असर नहीं हुआ। राजा के परिवार में वेणु नाम का एक राज-भक्त था। वह घूमता-घामता किट्टू भैया के घर पहुँचा। उसी समय सीबू गा रहा था। वेणु निश्चेष्ट हो कर वह गान सुनता रहा। उसके शरीर की सारी थकावट दूर हो गई! उत्साह से उसका तन-मन पुलकित हो उठा और वह राज महल को लौट आया। आते ही उसने राजा को यह खबर सुनाई। राजा ने हुक्म दिया कि उस अद्भुत गायक को फौरन बुलाया जाय।

वेणु किट्टू के घर पहुँचा, और दोनों से राजा के पास चलने के लिए आग्रह करने लगा। उन दोनों ने बहुत कहा कि हमें गाना-वाना कुछ नहीं आता है। इस पर वेणु ने समझा कि ये लोग संकोच कर रहे हैं—'आप तो इतने बड़े गायक हैं; आप यों संकोच क्यों करते हैं। राजा के पास चलिए; वह आप से खुश होंगे और आप को बहुत इनाम देंगे। अगर आप ने उन्हें खुश कर दिया, तो वह आप को अपने दरबार का मंत्री भी बना देंगे' इस प्रकार वेणु ने उनको बहुत प्रोत्साहित किया। आखिर वेणु ने किसी प्रकार सीनू को ले जाकर राजा के सामने खड़ा कर दिया। राजा ने खुद उस से कुछ गाने का आग्रह किया। सीनू गला संभाल कर कुछ गाने लगा। लेकिन उसके कण्ठ से आनाप-शनाप स्वर निकलने लगे। राजा ने सोचा कि यह मेरे सामने मेरी उपेक्षा कर रहा है, इसलिए उसने हुक्म दिया कि इसको फौरन कैद में डाल दिया जाय।

सीनू तो कैद में डाल दिया गया। लेकिन राजा की स्थिति में कोई फर्क नहीं हुआ। कुछ भी हो विचित्र वस्तु खोज लाना ही चाहिए! वेणु यह निश्चय कर घर से निकल पड़ा। जाते-जाते वह उसी जङ्गल में पहुँचा जहाँ किट्टू को वह भाग-भगाने वाला भवन दीख पड़ा था। वेणु को भी वह भवन उसी तरह दीख पड़ा।

वेणु दरवाजे पर पहुँचा। किवाड़ खोल कर बुढ़िया बाहर आई। उसको देख कर वेणु बोला—'दादी-दादी, हमारे महाराज की बीमारी दूर करने केलिए कोई एक विचित्र वस्तु दे सकती हो?' यह सुन कर बुढ़िया ने कहा—'अरे पगली, तू भी अपने राजा की तरह मति-शून्य है! तुझे क्या चाहिए यह तुझी को मालूम नहीं। सामने

की चीज को देख कर भी तुम पहचान नहीं सकते ! जा-जा भाग जा यहां से !' कहते हुए झला कर उसने दरवाजा बन्द कर दिया ।

'यह बुढ़िया तो बड़ी गर्वीली मालूम होती है !' वेणु के मन में जैसे ही यह भावना आई; और उसने आँखें उठा कर देखा; तो न वह बुढ़िया ही थी और न वह महल ही । वेणु घबरा गया और पैर जहां उसे ले गए, वह उसी ओर चलता गया ।

जाते-जाते वेणु फिर किट्टू भैया के घर पहुँचा । वेणु को देखते ही किट्टू ने अपने प्राण-प्रिय मित्र सीबू की बात पूछी । वेणु ने उसके कारावास की कहानी कह सुनाई । यह सुन कर किट्टू भैया बहुत दुःखित हुआ और बोला—'अच्छा, उसके लिए क्या किया जाय, पहले हम यह बात तो सोच लें । जरा आप आराम से बैठ जाइए' कहते हुए किट्टू ने उसे उस आराम कुर्सी पर बिठा दिया ।

कुर्सी पर बैठते ही एक क्षण में वह इधर-उधर झूलने लगा, और फिर धीरे-धीरे कुछ-कुछ गाने लगा । क्रमशः उसका स्वर ऊँचा हुआ और वह राग-रागिनी में ऊँचा गान गाने लगा । वह गान ठीक वैसा ही था, जैसा की सीबू गाता था । यह देख कर के किट्टू ने सोचा कि वेणु मेरे साथ धूर्तता कर रहा है । इसलिए उसने कुर्सी पर से खींच कर उसे बाहर निकाल दिया ।

जिसे सा-रे-गा-मा भी नहीं मालूम था, वह इतना सुन्दर गान कैसे गा सका ! यह सोच कर वह भारी विस्मय में पड़ गया । वेणु राज भवन की ओर चला । उसके पीछे पीछे किट्टू भी राजा से कह कर सीबू को छुड़ा लाने के अभिप्राय से चल पड़ा ।

वेणु राज भवन में पहुँच कर देखता क्या है कि राजा पहले से भी अधिक

चिंताग्रस्त बना हुआ है। यह देख कर वेणु बोला—'महाराज! मुझे अब अमर-गान करने की शक्ति प्राप्त हो गई है। अगर आप वह गान सुनेंगे तो आप की सारी चिन्ताएँ दूर हो जाएँगी!' यह कह कर वह गाने का उपक्रम करने लगा। लेकिन जब कण्ठ से आवाज निकली तो वही अनाप-शनाप!

जिस प्रकार सीनू राजा के आग्रह करने पर गधे की तरह रेंकने लग गया था, उसी प्रकार वेणु भी गर्धभस्वर में ऊट-पटांग गाने लग गया। अब राजा का जिसके उपर इतना भरोसा था वह वेणु भी उसका ऐसा अपमान कर रहा है! यह देख कर राजा की समझ में कुछ भी नहीं आया। आग-बबूला होता हुआ वह वेणु से कहने लगा—' अब अगर किसी ने मेरे सामने आकर गाने की बात की तो मैं उसकी खाल खिंचवा लूँगा!'

उसी दिन राजा ने एक स्वप्न देखा। बुढ़िया के रूप में एक देव-कन्या प्रगट हुई और बोली—'अरे राजा! क्या तू भूल गया है कि अंधे, लूले, असहाय बच्चे देवताओं के दया-पात्र होते हैं। तूने निरपराधी मेरे मित्र सीनू को क्यों कैद में डाल रखा है? तेरा सेवक वेणु हम देवताओं की महिमा भंग कर रहा है। इसे क्या तू यों ही देखता रह जाएगा? तू अपनी गलती समझ और समझ कर सुधार ...!' इस प्रकार गरज कर वह अदृश्य हो गई।

राजा ने सीनू को शीघ्र ही कैद से छोड़ दिया और वह अपने परिवार के साथ जङ्गल की ओर चल पड़ा। वहाँ उसे वह बाग बगीचे वाला भवन और वह काली बिल्ली दीख पड़ी। राजा सीधे महल में पहुँचा और देखा तो बैंच पर एक

चिट्ठी पड़ी हुई थी—लिखा था कि बूढ़ी दादी चली गई—अब कल ही उसके दर्शन होंगे!'

'अच्छा! कल फिर आ जाएँगे!'—यह सोच कर राजा घर चला आया। लौटते समय उसे किट्टू भैया का घर मिला। वहाँ उसे वह अमर-गान अच्छी तरह सुनाई पड़ा। राजा सीधे घर में चला गया। राजा को अपने घर में आया हुआ देख कर किट्टू के आनन्द की सीमा न रही। उसने राजा को ले जाकर सीधे उसी कुर्सी पर बिठा दिया।

कुर्सी पर बैठते ही धीरे-धीरे राजा गुनगुनाने लग गया! उसका स्वर मधुर और उच्च होने लग गया। फिर तो उसने राग-रागिनी में गाना शुरू कर दिया गाते-गाते वह एक दम निश्चिंत और स्वस्थ दिखाई पड़ने लगा। यह देख कर किट्टू भैया अत्यन्त आह्लाद से उछल पड़ा—'सीवू, तूने गाया! वेणु ने गाया, वही गान अब राजाजी भी गा रहे हैं। उसका सारा रहस्य इस कुर्सी में ही है। उस बूढ़ी दादी ने जब मुझे यह कुर्सी दी थी उस समय ही उसने कह दिया था कि यह कुर्सी महिमामयी है।

उसी समय आकाश-वाणी हुई—'इतने दिनों के बाद यह रहस्य आज तुम लोगों को मालूम हुआ' कह कर वह वाणी अट्टहास करने लगी।

'ठीक! बहुत ठीक!!' मैं अपनी गलती अब समझ गया। महिमामयी वह संगीत कुर्सी, उसके साथ सीवू और किट्टू भैया को राजा अपने साथ ले गया। कुर्सी को राज-भवन में सजा कर रख दिया। उस दिन से सीवू और किट्टू को राजा ने अपने दरबार के मन्त्री-पद पर नियुक्त कर दिया।

गुरुद्वारे का मोह

सिखों के आदि गुरु नानक छब्बीस साल की उम्र में फ़कीर बन गए। उस समय तक उन के परिवार में पत्नी और दो बच्चे थे। पत्नी का नाम था सुलीदेवी। बड़ा बेटा श्रीचन्द्र चार साल का था; और छोटा लक्ष्मीदास एक साल का।

नानक फ़कीर हो कर मरघटों में घूमने लगे और उन की पत्नी सुलीदेवी बच्चों के साथ मायके चली गई। वहाँ उसने पति से अलग रह कर चौबीस साल बिताए।

चौबीस साल की उस अवधि में गुरु नानक ने सारे देशों में भ्रमण किया, और अपने धर्म-सिद्धान्त का प्रचार किया। उनकी उमर साठ साल की हुई और बुढ़ापा आ धमका। इसलिए वे देशाटन छोड़ कर पंजाब की व्यास नदी के तीर पर एक सुन्दर आश्रम बना कर रहने लगे। उस ग्राम का नाम उन्होंने करतारपुर रखा। करतारपुर का अर्थ था जहाँ दुनिया का बनाने वाला रहता हो।

चारों ओर से बहुत-से साधु-संत और उनके शिष्य करतारपुर पहुँचे और गुरु नानक के पास साधना-आराधना में रह कर जीवन बिताने लगे। उनके शिष्यों में कुछ लोग बड़े धनवान और जमींदार भी थे। जो बहुत तरह की भेंट ला-ला कर वहाँ समर्पित करते रहते थे।

प्रारम्भ से ही गुरु नानक को धन की ओर दार्शनिक दृष्टि से देखने की आदत पड़ी हुई थी। इसलिए जो कुछ उनके पास आता था, वह तभी के तभी साधु-संतों की सेवा में वे खर्च कर डालते थे।

'करतारपुर में गुरु नानक ने गुरुद्वारे की स्थापना की है, और वहाँ उनके शिष्य-

करतार सिंह

गण आ-आ कर अनेक तरह की भेंट चढ़ाते रहते हैं' यह खबर चुनीदेवी के कानों में पड़ी। यह बात सुनते ही चुनीदेवी अपने दोनों बेटों को लेकर करतारपुर पहुँची और कहने लगी—'हम लोगों को भी इस आश्रम में रहने की आज्ञा दीजिए'। इस पर नानक ने कहा—'सबों के साथ तुम भी रह सकती हो।'

लेकिन वे लोग मामूली शिष्यों की तरह कैसे रह सकते थे! धीरे-धीरे उन्होंने गुरुद्वारे के संबन्ध में अधिकार चलाना शुरू किया। रोज जो चढ़ावे आते थे उनको संभाल-संभाल कर रखना उनका काम हो गया।

यह देख कर गुरु नानक ने चुनीदेवी और पुत्रों को अपने पास बुलाकर कहा—'गुरुद्वारे में जो दान आते हैं उसे खर्च करने का सारा भार मैंने अपने शिष्य लेहना को सौंप दिया है, वही सारा काम करेगा; तुम लोग उस में कोई दखल मत देना।'

उनकी बातें सुन कर चुनीदेवी और उनके बेटों को बुरा लगा। चुनीदेवी ने गुरु से कहा—'गुरुद्वारे का नायकत्व तो आप के पुत्रों को ही मिलना चाहिए!'

इस पर नानक ने अत्यन्त निर्मम होकर कहा—'यह सब शिष्य-गण मेरे पुत्र ही हैं। इन सबों में श्रेष्ठ है लेहना; मेरे बाद वही इस गुरुद्वारे का मालिक होगा। लेहना में जो योग्यता है, वह न तुम्हारे श्रीचन्द्र में है और लक्ष्मीदास में! यहाँ तो आवश्यकता है इस बात की, कि मेरे धर्म-सिद्धान्त को लोग समझें और उसका लोक में प्रचार करें। यह शक्ति सब से बड़ी है। रुपए संभालने की योग्यता की यहाँ जरूरत नहीं। इसलिए तुम लोग इस बात में दखल देकर मुझे कष्ट न पहुँचाना!'

लेकिन चुनीदेवी अपने बेटों के साथ फिर भी वहाँ इस आशा से जमी रहीं

कि गुरुद्वारे का अधिकार उसी के हाथ में रहे !

गुरु नानक अब सत्तर साल के हुए। एक दिन प्रातःकाल उन्होंने लेहना को बुलाया और कहा—'कल रात मैं इस दुनिया से चल दूँगा; गुरुद्वारे के पीछे जो पीपल का पेड़ है उसके नीचे मेरा बिछावन डाल दो !'

गुरु नानक मरण-सेज पर पड़े भगवान का नाम जपते हुए मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे, कि सुलीदेवी अपने पुत्रों को लेकर आखिरी बार उनके पास आईं और गुरुद्वारे के अधिकार की याचना की। लेकिन गुरु नानक ने कुछ नहीं सुना; उन्होंने कहा—'मेरे बाद गुरुद्वारे का मालिक होगा लेहना; और अब से उसका नाम होगा अंगद। मेरे बाद वही सिखों का गुरु होगा !' ऐसा कहते-कहते वे स्वर्ग सिधार गए।

गुरु नानक के बाद अंगद गुरु हुआ। वह हमेशा ध्यान में रहता और नानक के धर्म-सिद्धांत का शिष्यों के बीच प्रचार करता; नीति और न्याय से समय बिताने लगा।

गुरु नानक के समय की अपेक्षा अंगद के गुरु होने पर गुरुद्वारे में ज्यादा चढ़ावे आने लगे। इतनी सामग्रियों के होते हुए भी गुरु अंगद सिर्फ सूखी रोटी खाया करते थे; और सारी रकम साधु-संतों की सेवा में लगा देते थे। जैसे-जैसे गुरु अंगद की शिष्यों में श्रद्धा-भक्ति बढ़ने लगी वैसे-वैसे नानक के पुत्रों के मन में उनके प्रति ईर्ष्या तीव्र होने लगी। वे बड़े-बड़े महाराज और जमींदारों को अंगद के पैरों पर पड़ते देख कर ईर्ष्या से जल जाते थे।

'यदि शिष्यों को फोड़ कर गुरुद्वारे की मालकी हासिल कर लें, तब यह गौरव हमीं को प्राप्त होगा न !'—ऐसा सोच कर श्रीचन्द शिष्यों को भड़काने लगा। बहुत दिनों तक

करतारपुर में रह कर नानक के धर्म-सिद्धांतों को सुनता आया था, इसलिए वह तोते की तरह लोगों के सामने रटता रहता था।

लेकिन उसके मर्म को खोल कर समझाने की शक्ति उसमें कहाँ थी! यों ही मन-माना कुछ कहता जाता था। गुरु अंगद को यह बात मालूम हुई। श्रीचन्द्र के कारण नानक के धर्म-सिद्धांत पर आघात हो रहा है—यह जान कर भी गुरु-पुत्र के गौरवार्थ वे चुप ही रह गए।

गुरु अंगद को चुप देख कर श्रीचन्द्र का अहंकार और भी बढ़ गया और वह गुरु अंगद की उपेक्षा करके बातें करने लगा। इतना ही नहीं अंगद गुरुका अपमान करने के उद्देश्य से वह एक दिन शिष्यों को साथ लेकर करतारपुर पहुँचा।

गुरु-पुत्र आए हैं—यह सुनते ही अंगद गुरु उठ खड़े हुए। जिस प्रकार वे गुरु नानक को नमस्कार करते थे, उसी तरह श्रीचन्द्र के सामने भी वे दण्डवत् हो गए।

अहंकार से आए श्रीचन्द्र को यह नहीं मालूम होता था कि गुरु का अपमान किस तरह किया जाय! इतने में गुरु अंगद की लम्बी दाढ़ी पर उसकी नजर पड़ी! बस वह अवहेलना के स्वर में बोल उठा—'अरे भाई, इतनी लम्बी दाढ़ी क्यों बढ़ाई है!'

इस पर गुरु अंगद ने बड़ी नम्रता से कहा—'गुरु-पुत्रों के चरणों पर जो धूल पड़ गई हो उसे पोंछने के लिए ही मैंने इतनी लम्बी-दाढ़ी बढ़ाई है!' यह बात सुनते ही श्रीचन्द्र शर्म से गड़ गया। उसके साथ जो लोग आए थे, उन लोगों ने गुरु अंगद की महिमा समझी और श्रीचन्द्र को छोड़ कर वे लोग वहीं करतारपुर में रहने लग गए। उस दिन से श्रीचन्द्र और उसके भाई ने गुरुद्वारे का मोह छोड़ दिया।

रंगीन चित्र कथा : चित्र-चौथा

★

इसलिए कृपाशङ्कर बोला—'माँ ! बन्दर और हीरामन धूम मचा कर चले गए ! लेकिन कोयल-रानी ऐसा नहीं करेगी !'—'बहुत अच्छा ! यह कोयल-रानी भी एक-न-एक दिन धूम मचाएगी। इसलिए आज-कल किसी के साथ स्नेह करने की सुविधा नहीं है। अब तुम्हें अकेले ही रहना पड़ेगा—समझे !' उसकी माँ ने उसे यह चेतावनी दी।

जैसा सोचा था—दूसरे दिन कोयल-रानी कृपाशङ्कर की झोंपड़ी में पहुँची। वर्षा हो रही थी। उस मित्र के साथ कोई काम करने की इच्छा कृपाशङ्कर को नहीं हुई। लेकिन देखते-देखते बहुत काम उसके सामने आ खड़े हुए।

कोयल-रानी ने देखा कि कृपाशङ्कर अभी कुछ उदास-सा दीख रहा है। इसलिए धीरे-धीरे आकर वह उसके कन्धे पर बैठ गई। कृपाशङ्कर ने जिन्दगी में कभी वैसी सुरीली तान न सुनी होगी; जैसी कोयल-रानी ने उसे सुनाई। वह तन्मय हो गया। पेड़-पौधे, नदी-नाले, जङ्गल-पहाड़, कुंज-निकुंज, समीर-सुगन्ध, फूल-भौंरे, तितली-रानी कोमल-किसलय न जाने किस-किस के गान उसने उसे सुनाए।

इतना ही नहीं जङ्गली जानवरों की अजीब अजीब कहानियाँ भी उसने गाकर सुनाईं। कृपाशङ्कर कोयल-रानी के गान में ऐसा मुग्ध हुआ कि अपना सारा काम-काज भूल गया। उस खुशी में उसे यह भी मालूम न हुआ कि कब शाम हो गई। कृपाशङ्कर को यह बात तब मालूम हुई जब उसके माँ-बाप घर आ गए।

बड़ों ने जब कोयल-रानी की बात सुनी तो बड़े आह्लादित हुए। उन्होंने कहा—'इतने दिनों के बाद सचमुच तुम ने एक मनोहर मित्र प्राप्त किया है !' यह सुन कर कृपाशङ्कर बोला—'हाँ ! जैसा हम करते हैं, बन्दर उसका अनुसरण करता है। हम जैसा बोलते हैं: हीरामन उसी की नकल करता है। लेकिन कोयल-रानी ऐसा नहीं करती। अपने गान-तान से सचमुच यह आदमियों से बहुत-से काम करवा लेती है। इसीलिए मैं इसे कोयल-रानी कहता हूँ !'

पुराने जमाने में, एक समय सुभावती नगर में सम्बल नाम का राजा राज्य करता था। उसके दरबार में बड़े-बड़े महावीर रहा करते थे।

एक समय महामल्ल नामक एक बहुत बड़ा उस्ताद सम्बल के दरबार में आया। वह देश-देशान्तर में घूम कर कितने ही मल्लों को पछाड़ चुका था, कितनी ही बड़ी-बड़ी विरदावली और पदक पुरस्कार प्राप्त कर चुका था। वह चिल्लाता फिरता था---'दुनियाँ में है कोई मुझे जीतने वाला?'

वह महामल्ल सम्बल महाराज के पास आकर बोला—'आप के दरबार में क्या मुझसे लड़ने वाला कोई पहलवान है? हो तो बहुत अच्छा है; न हो तो मुझे विजय की विरदावली देने की कृपा कीजिए।'

उसकी बात सुन कर लोग दंग रह गए। उसे क्या जवाब दिया जाय, किसी को कुछ नहीं सूझा। फौरन मन्त्री उठ कर कहने लगा—'यह कौन-सी बड़ी बात है महाराज! हमारे दरबार में रहने वाले जो चण्ड-प्रचण्ड मल्ल हैं, उनकी बराबरी कौन कर सकता है? वे अभी घर गए हैं परसों आ जाएँगे; फिर इसकी बातों का मुँह तोड़ जवाब दे देंगे।'

शीघ्र ही उस महामल्ल के लिए राजा की ओर से रहने खाने की सभी सुव्यवस्थाएँ कर दी गईं। महामल्ल अपने डेरे में जाकर बैठ गया और मन्त्री की बातों पर गहरा विचार करने लगा। उसके मन में एक हलचल मचने लगी। नौकर चाकरों से उस चण्ड-प्रचण्ड के बारे में खोद खोद कर पूछने लगा।

यह सुन कर नौकर-चाकर बोले—'वे यहाँ के सभी पहलवानों के उस्ताद हैं। वे योग-साधना में रहते हैं! जब कभी

भरोसा लाल

दरबार की मर्यादा पर कोई आफत आती है, तभी वे बाहर आते हैं।

दूसरे दिन उस महामल्ल के डेरे के पास एक खास-भवन का निर्माण किया गया। उसके सामने बहुत बड़ा एक सिंहद्वार बनवाया गया। यह देख कर अचरज से महामल्ल ने पूछा—'यह क्या है?' उसके जवाब में वहाँ के सेवकों ने कहा—'और क्या है? हमारे चण्ड-प्रचण्ड उस्ताद आ रहे हैं। वे मामूली आदमी तो हैं नहीं। साधारण दरवाजा उनके लिए बस नहीं होता; इसलिए यह सिंहद्वार उनके लिए बनवाया गया है!'

मकान बनाने वाला राज-मिस्त्री मजदूरों से कहने लगा—'अरे भाइयो! खूब ज़ोर-ज़ोर से दुरमिस मारो; क्योंकि अगर हमारे उस्ताद कदम रखेंगे तो ज़मीन के धस आने का डर है!' इस प्रकार मजदूरों को उत्साहित कर रहा था वह राजगीर। महामल्ल के देखते-देखते बर्तनों में मक्खन-बादाम और खाने के अनेक पदार्थ भर-भर कर गाड़ियों पर आने लगे।

महामल्ल ने जब यह सारी तैयारी देखी तो उसका कलेजा धड़कने लगा। सारे शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया गया, कि कल चण्ड-प्रचण्ड उस्ताद इस नए भवन में आ जाएँगे।

यह सुनते ही दूसरे दिन सवेरे अट्ठाईस घोड़ों से खींचा जाने वाला एक भारी रथ उस सिंहद्वार के पास आ खड़ा हुआ। और चण्ड-प्रचण्डमल्ल के जय-जयकार से सारा आकाश-पाताल गूँज उठा। इस उस्ताद के स्वागतार्थ महाराज भी खुद वहाँ आ गए।

महामल्ल से चण्ड-प्रचण्ड का परिचय कराने राज-मन्त्री जब उसके डेरे पर पहुँचा। लेकिन वहाँ था ही क्या! डेरा खाली पड़ा था और बड़ी-बड़ी विरदावली का बोझ माथे पर उठाए हुए फिरने वाले महामल्ल जी कब के नौ-दो ग्यारह हो चुके थे!!'

चुटकुले

★

जज : (अपराधी से) अपने सीधे हाथ में गंगा जली लेकर कहो कि—'जो कुछ कहूँगा सच कहूँगा।'

अपराधी अपने उल्टे हाथ में गंगा जली लेकर बोल ने वाला था कि जज ने चिल्लाकर कहा—

जज : 'मैं कहता हूँ सीधे हाथ में लेकर सच-सच बोलो।'

अपराधी : "सच-सच बोल दूँ हुजूर?'

जज : हाँ!

अपराधी : 'हुजूर! मेरे सीधा हाथ ही नहीं है।

—०—

एक मास्टर ने लड़के की परीक्षा लेकर उस की माता को यह समाचार लिख भेजा—'आप का लड़का बड़ा बुद्धिमान और चतुर है; लेकिन साथ ही बड़ा नट खट भी है। आप बताएँ कि क्या किया जाए।'

माता ने जवाब में लिखा—'आप जैसा उचित समझें करें। मैं खुद ही इस के पिता के बेढंगे-पन से परेशान हूँ।'

मोहन की माँ ने मोहन से कहा—"बेटा जा-पान ले आ।'

इस पर मोहन ने जवाब दिया—'माँ! जापान तो बहुत दूर है; मैं कैसे जा सकता हूँ?'

मास्टर साहब ने श्रीराम से पूछा—'बताओ यदि सफेद गाय सफेद दूध देती है तो काली गाय कैसा दूध देती?'

श्रीराम ने झट से जवाब दिया—'काले रंग का देगी और किस रंग का देगी।'

—०—

एक आदमी एक गंवार को दीया पकड़ाते हुए—'भैया जरा इसे पकड़ लो तो रोशनी में मैं अपनी पोथी पढ़ लूँ।'

गांव का आदमी बोला—'अरे इस में से तो आग निकल रही है अगर मैं जल गया तो?'

—०—

भिखारी, बाबा : केवल रोटी दे दो, बहुत भूखा हूँ।

सेठजी : जा-जा यहाँ तेरी दाल नहीं गलेगी।

भिखारी : मैं तो साग ही खाऊँगा।

—०—

मास्टर : (नन्द से) बताओ पीटर महान कौन थे?

नन्द : जो सब को पीटते थे।

सीता : अम्मा! राम तो भोले हैं न?

अम्मा : हाँ बेटी!

सीता : तो आप हरे राम-हरे राम क्यों कहती हैं?

कुरूप रानी

वह एक विचित्र राज्य था। उस राज्य में आईने का एक टुकड़ा भी नहीं दीख पड़ता था! बात यह थी कि उस राज्य की रानी की आज्ञा से राज्य के सभी आईने तोड़ डाले गए थे। अगर कहीं किसी के यहाँ कोई आईना पाया जाता तो उसे मौत की सजा मिलती थी।

इस विचित्र कानून के लिए कारण का अभाव नहीं था! उस देश की रानी वास्तव में एक कुरूप स्त्री थी। वह ऐसी बदसूरत थी कि जिसकी कोई मिसाल वहाँ खोजे नहीं मिलती थी। यह बात रानी को मालूम थी। इसलिए उसने निश्चय किया कि उसका प्रतिबिम्ब किसी को स्वप्न में भी न दीख पड़े।

इस से भी उसके निश्चय का एक मुख्य कारण और था—उसके राज्य में जहाँ कहीं आनंद, सौंदर्य और सम्भोग्य पदार्थ हो, वह सब उसी को प्राप्त हो और किसी को वह सौभाग्य न हो। रानी के आदेश में यह रहस्य भी छिपा हुआ था। अर्थात् उसे जो आनन्द प्राप्त है, वह कोई दूसरा न प्राप्त करे उसका उद्देश्य यही था। इसलिए उसने आईना रखना कानूनन बन्द कर दिया था।

अब इस कानून के कारण कोई कैसी भी सुन्दरी क्यों न हो; वह अपने सौंदर्य के ज्ञान रखने का साधन खो बैठी थी। कोई अपने होंठों की रसीली हँसी देख नहीं पाती थी, वेणी में फूल डाल कर उसकी शोभा देख कर मुग्ध होने का सुवाअवसर नहीं पा सकती थी। विधाता ने चाहे कितना भी सौंदर्य दिया हो, उसे देख कर आत्म संतोष पाने का कोई साधन नहीं रह गया था।

आईने की बात क्या! पानी में भी अपनी परछाँई देख सके—इसकी सुविधा

संतोष [illegible]

परीक्षा कर ली थी। इसलिए आईने का अभाव उसे नहीं खटकता था, और दमयन्ती बहुत खुश रहा करती थी। कुछ दिनों के बाद दोनों ने शादी करने का निश्चय किया।

यह बात रानी के कानों में पड़ी। दमयन्ती के सौंदर्य की बात उसे पहले से मालूम थी ही। जो सदा दूसरों की सुख-समृद्धि से जलती आई थी, उस रानी को उस की शादी की बात सुनते ही जैसे बिच्छू ने डङ्क मार दिया! अब वह इस धुन में लगी कि किसी तरह यह विवाह-संबन्ध टूट जाय।

कुछ ही दिनों में विवाह होने वाला था। एक दिन दमयन्ती अपने घर के काम में लगी थी कि उसके पास एक बुढ़िया आई। कुछ देर तक उसको गौर से देखा और चीख कर गिर पड़ी! गिरते-गिरते बोली—

'अरे कैसी भयंकर मूर्ति देखने को मिली है मुझे!'

'क्या बात है! क्या देख कर कांप गईं!' दमयन्ती ने पूछा।

'क्या पूछती हो, ऐसी विकृति तो मैंने सारी दुनिया में कहीं देखी नहीं!' बुढ़ी ने कहा।

'कौन है दादी वह विकृत-रूप वाली!' दमयन्ती ने फिर पूछा।

भी किसी को नहीं रह गई थी। इसलिए जहां तक हो सकता था, राज्य के सभी नदी, नाले, बावड़ी, तालाब पत्थरों से पाट दिए गए थे। कुएँ इतने गहरे थे कि उनमें अपनी परछाईं आसानी से देखी नहीं जा सकती थी।

* * *

उसी राज्य में, राज-नगर के पास दमयन्ती नाम की एक युवती रहती थी। दमयन्ती सुन्दरियों में रानी थी। जिसने उसका वरण किया था, उसका नाम था चन्द्र। उसने उसके सौंदर्य की अच्छी

'अरे !, और कौन !—तू ही ! मैं नब्बे साल पार कर गई हूं, पर तुम्हारे ऐसी बदसूरत औरत को मैंने कहीं नहीं देखा ।'

दमयन्ती अचरज में पड़ गई मिट्टी के लोंदे की तरह अधमरी सी जमीन पर बैठ गई । बुढ़िया यह कह कर गायब हो गई ।

* * *

उस दिन से दमयन्ती के मन में असीम वेदना शुरू हो गई—'अरे ! क्या मैं ऐसी कुरूपा हूं ! क्या मैं ऐसी चुड़ैल हूं !' यही आंधी उसके मन में चलती रहती थी ।' उसे शांत करने के लिए चन्द्र ने कितने ही उपाय किए, लेकिन कोई फायदा न हुआ । अब वह शादी की बात उठाता, तो वह और भी कुम्हला जाती !

चन्द्र बड़े ही असमंजस में पड़ा । 'कुछ भी कहो, चन्द्र ! तुम मेरे प्राण के समान हो ! लेकिन देखते-देखते मेरे ऐसी कुरूपा तुम्हारी स्त्री नहीं हो सकती ! मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकती !' वह यही जवाब देती ।

दमयन्ती केवल इसी भ्रम में पड़ी हुई सिर धुनती रहती । उसे किस प्रकार समझाया जाए, चन्द्र इस उलझन में पड़ा रहने लगा । इस के लिए एक ही रास्ता था, जब

तक दमयन्ती आईने में अपनी सूरत नहीं देख लेती है, तब तक उसे कोई समझा नहीं सकता है ! लेकिन देखना चाहे तो राज्य में कहीं आईने का नामो-निशान नहीं । साहस करके कहीं से ले आओ, तो रानी को पता लगने पर गले में फांसी की रस्सी आ पड़े । आखिर समझा-बुझा कर चन्द्र दमयन्ती को रानी के पास ले गया ।

रानी के पास पहुंच कर—'दया दिखाइए !' कह कर दोनों गिड़-गिड़ाने लगे । चन्द्र ने कहा—'महारानी ! कृपा करके एक आईने का प्रसाद हमें दीजिए !'

यह प्रार्थना सुनते ही रानी ने गरज कर कहा—'ऐसी प्रार्थना करने का साहस तुम्हें कैसा हुआ!' यह सुन कर दमयन्ती को आगे करके अपनी सारी कष्ट-कहानी खोल कर चन्द्र ने कह सुनाई—'महारानी! क्षमा कीजिए! हम पर दया कीजिए! आपके सामने यह लड़की अत्यन्त संकोच में दबी जा रही है। यह सोच रही है कि यह बहुत कुरूपा है!' उसने कहा।

'कुरूपा नहीं तो क्या है!' रानी ने हुंकार कर कहा।

दमयन्ती का सिर घूम गया—'अब और बचना ही क्या। उस दिन उस बुढ़िया ने भी यही कहा था। अब यह महारानी भी यही कह रही हैं!' कहती हुई वह निश्चेष्ट-सी हो गई।

रानी ने जो कुचक्र रचा था, वह चन्द्र को अब मालूम हुआ। वह आग-बबूला हो गया। उसके तन-बदन में आग लग गई—यह रानी पागल की तरह क्या बक रही है! या जान-बूझ कर कोई खेल खेल रही है! त्रिलोक सुन्दरी दमयन्ती को यह कुरूपा कह रही है, साहस तो देखो इसका, और बुढ़िया के द्वारा एक नाटक भी कर दिखलाया है। कैसा विश्वास-घात किया उसने!'

रानी के सिंहासन के पास ही कातिल लोग बैठे थे; रानी ने उन्हें इशारा किया।

जल्लाद ने तलवार उठाई; उसकी बड़ी तलवार चमाचम चमक रही थी। हठात दो चीखें सुन पड़ीं। एक दमयन्ती की थी जो उस तलवार में पड़ी अपनी परछाईं को देख कर खुशी के मारे निकली थी—!

दूसरी चीख थी रानी की, जैसे किसी ने उसका गला दबोच दिया हो! उसने भी अपनी परछाईं उस तलवार में देखी और अपनी कुरूपता देख कर ऐसी चीखी की उसके प्राण पखेरू उड़ गए!

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगित

जुलाई १९५४ :: पारितोषक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फोटो जुलाई के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर-संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर मई के अन्दर ही निम्न लिखित पते पर भेजनी चाहिए।

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास-२६

जून - प्रतियोगिता - फल

जून के फोटो के लिए निम्न लिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १०) का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फोटो : **जाने की आकुलता** दूसरा फोटो : **पाने की आतुरता**

मनमोहन आचार्य, **खिलचीपुर** (मध्यभारत)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषक के नाम सहित जून के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। उक्त अंक के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी।

दस्तूरी

पटवारी, सदासुखलाल का नाम ही उस गाँव के लिए हौआ-सा बन गया था। बड़े बड़े कर्मचारी भी उनके नाम से थर्रा उठते थे।

उस गाँव में एक बार एक बड़ा ज्योतिषी आया। उसने बड़े लोगों के हाथ देखे पत्र-पंचांग मिलाया—भविष्य-वाणियाँ कीं; और काफी दान-दक्षिणा बटोर लिया। फिर वह पटवारी जी के दर्शन को उनके घर पहुँचा।

पटवारी चौपाल पर बैठे हुए बही-खाता जमा-बन्दी मिला रहे थे। ज्योतिषी अभिवादन करके उनके पास खड़ा हो गया।

'आइए! आइए!! ज्योतिषी महाराज!' कलम कान पर रखते हुए बड़े गौरव के साथ पटवारी ने उस का स्वागत किया। कुशल-प्रश्न के बाद ज्योतिषी ने अपने आने का कारण बताया, और पटवारी जी का हाथ अपने हाथ में लेकर अत्यन्त मनोयोग के साथ कहना शुरू किया—'आहा! कैसी गजब की हस्त रेखाएँ हैं आप की! आप की जन्म-पत्री बतलाती है कि शनि-योग से आप स्वामी ही नहीं, विश्व-विख्यात राजधिकारी-पद को भी सुशोभित करेंगे!'

जब सब कुछ देख-भाल करना खतम हो गया, तब पटवारी ने पूछा—'हाथ देखने की आप की दस्तूरी क्या है?'

'उसकी क्या बात है? जिसकी जो मर्जी होती है दे देता है। जिसके पास कुछ भी नहीं, वह भी कहीं से लाकर चार रुपए तो हाथ पर रख ही देता है! आप तो धर्मात्मा पुरुष हैं; आप के साथ मोल-तोल की बात क्या!' ज्योतिषी ने जवाब दिया।

'गाँव में और भी तो बड़े-बड़े लोग हैं। सरपंच हैं, कौड़ीमल सेठ हैं, नत्थू साहूकार हैं, बाँकेलाल जमींदार हैं, इन

गंगाराम शर्मा

सबों के यहाँ क्यों नहीं जाते हो?' मुन्शी जी ने बड़ी गम्भीरता से सुझाव पेश किया।

'क्षमा कीजिएगा; उन लोगों को देख कर ही आया हूं; रास्ते पर ही तो उनके घर हैं!' ज्योतिषी ने कहा।

'तो फिर उनसे कितना वसूल किया?' पटवारी जी ने फिर पूछा।

'अजी! महीने डेढ़ महीने से इसी गाँव के चारों ओर घूम रहा हूँ। सचमुच इस गाँव में लक्ष्मी बसती है! खास करके यहाँ का आदर-सत्कार तो महत्व-पूर्ण है। विद्वानों और कलाकारों का मान करने वाले गुण-ग्राहक भी यहाँ अधिक हैं।' ज्योतिषी ने कहा। 'अरे भाई! तुमको दस रुपए मिल जाएँ तो इस में हमें खुशी ही होगी! हमारे गाँव में आप जैसे विद्वान आएँ, तो उनका उत्साह बढ़ाना ही चाहिए।' पटवारी जी ने बड़ी शान के साथ कहा।

ज्योतिषी जी गर्व से फूल उठे और कहने लगे—'आप से क्या छिपाऊँ; अब तक करीब दो सौ वसूल हो गए हैं!'

मुस्कुराते हुए मुन्शी जी ने कहा—'बहुत अच्छा! अब हिसाब लगाइए—फी रुपया पाँच दमड़ी के हिसाब से सवा पाँच रुपए हमारी दस्तूरी निकाल कर हमारे हाथ में रख दीजिए। अपनी दस्तूरी चार रुपया मिन्हा कर लीजिए और सवा रुपया मेरे पास जमा कर दीजिए, लेखा-जोखा साफ!'

ज्योतिषी मुँह बाए रह गए। मालूम नहीं पटवारी और क्या जुल्म ढाए—इस डर से ज्योतिषी जी ने झट-पट सवा रुपया निकाल कर दे दिया और वहाँ से चलते बने।

उस दिन से वह ज्योतिषी जब कभी किसी का हाथ देखता और कोई पटवारी का नाम लेता तो वह हाथ छोड़ कर भाग खड़ा होता था।

टाइप-राइटिंग के चित्र

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him

Chandamama, May '54 | Photo by I. V. S. Sastry

पुरस्कृत परिचयोक्ति

उत्सव गान

प्रेषक:
शा. कृ. पावन, इन्दौर

रङीन चित्र कथा, चित्र - ४